अक्तूबर-दिसंबर २००२

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

श्रीनाथ

ए. असफल

राजेंद्र सिंह गहलौत

डॉ. अजरा 'नूर'

डॉ. उर्मिला शिरीष

आमने-सामने
डॉ. उर्मिला शिरीष

सागर-सीपी
डॉ. किशोर काबरा

१५ रुपये

तुमच्या ठेवीत वृध्दी झालेली आम्हालाही आवडेल...

मोठ्या ठेवींवर विशेष वाढीव दर

ज्येष्ठ नागरिकांसाठी विशेष योजना
27 महिने व त्याहून अधिक कालावधीसाठी असलेल्या ठेवींवर वाढीव दर
रु.1,00,000 पर्यंतच्या प्रत्येक ठेवींवर 0.50% वाढीव दर
रु.1,00,000 हून अधिक प्रत्येक ठेवींवर 1.00% वाढीव दर

मुदत ठेवींवरील व्याजाचे दर		
मुदत	दर (%) नागरिकांसाठी	दर (%) पंजीकृत को-ऑप सोसा.साठी
30 दिवस ते 90 दिवस	6.00	7.00
91 दिवस ते 180 दिवस	7.00	8.00
181 दिवस ते 1 वर्ष	8.00	9.00
1 वर्षापेक्षा अधिक ते 2 वर्ष	8.75	9.75
2 वर्षापेक्षा अधिक ते 3 वर्ष	9.25	10.25
3 वर्षापेक्षा अधिक	8.00	9.00

नागरिकांच्या मोठ्या ठेवींवर विशेष योजना
एक रकमी 15 लाखाहून अधिक व 20 लाखांपर्यंत असलेल्या ठेवींवर 0.50% वाढीव दर
एक रकमी 20 लाखाहून अधिक व 50 लाखांपर्यंत असलेल्या ठेवींवर 0.75% वाढीव दर
एक रकमी 50 लाखाहून अधिक असलेल्या ठेवींवर 1.00% वाढीव दर

पंजीकृत को.-ऑप.सोसायटीज्करिता त्यांच्या मोठ्या ठेवींवर विशेष योजना
एक रकमी 25 लाखाहून अधिक व 50 लाखांपर्यंत असलेल्या ठेवींवर 0.25% वाढीव दर
एक रकमी 50 लाखाहून अधिक असलेल्या ठेवींवर 0.50% वाढीव दर

...तुमचा आनंद, तुमचे समाधान
हीच आमची खरी कर्तव्यपूर्ती,
म्हणूनच तुमच्या मोलाच्या ठेवींवर
आम्ही देत आहोत वाढीव दर !
म्हणजेच कष्टाने जमविलेल्या
आपल्या पुंजीचे पूरेपूर मुल्य,
शिवाय जनकल्याण बँकेत
जमा केलेली आपली ठेव संपूर्ण सुरक्षित !

बँकेची ठळक वैशिष्ट्ये
* लेखापरिक्षेचा 'अ' वर्ग
* ठेवी रु. १०५० कोटीहून अधिक
* कर्ज रु. ६५० कोटीहून अधिक
* गुंतवणूक रु. ४०० कोटीहून अधिक

जनकल्याण
सहकारी बँक लि.
(शेड्यूल्ड बँक)
The Bank with a homely touch

मुख्य कार्यालयः विवेक दर्शन, १४०, सिंधी सोसायटी, चेंबूर, मुंबई-४०००७१. फोनः २५२२ २५८२ फॅक्सः २५२३ ०२६६.

मुंबई उपनगरीत व मुंबईच्या बाहेरील भागात पसरलेल्या 25 शाखांद्वारे उत्कृष्ट ग्राहक सेवेत सदैव तत्पर

L'amour/JKB/05/MAR

अक्तूबर-दिसंबर २००२
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
देवमणि पांडेय
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●
आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु.
वार्षिक : ५० रु.
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
विदेश में (समुद्री डाक से)
वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमान्ड ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर द्वारा केवल 'कथाबिंब' के नाम ही भेजें.

● संपर्क ●
ए-१० 'बसेरा,'
ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८
फोन : २५५१ ५५४१ व २५५५ ५८२२
टेलीफैक्स : २५५५ २३४८
e-mail : kathabimb@yahoo.com

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

।। ५ ।। धुरी / श्रीनाथ
।। १० ।। त्रिभुज / ए. असफल
।। १८ ।। नाम में क्या रखा है ? / राजेंद्र सिंह गहलौत
।। २१ ।। कान्हा, माफ़ करना ! / डॉ. अज़रा 'नूर'
।। २४ ।। लौटते हुए / डॉ. उर्मिला शिरीष

लघुकथाएं

।। ९ ।। तपती ज़िंदगी / रामशंकर चंचल
।। ९ ।। दूरदृष्टि / मनोज सेवलकर
।। २० ।। लड़की / आभा पूर्वे
।। २७ ।। कैक्टस / रितेंद्र कुमार अग्रवाल
।। ४६ ।। नैतिकता, पायदान / सत्य नारायण गुप्त
।। ४६ ।। भय / रमेश मनोहरा

ग़ज़लें / कविताएं

।। १७ ।। ग़ज़ल / सलीम अख़्तर
।। १७ ।। ग़ज़ल / कृपा शंकर शर्मा 'अचूक'
।। २३ ।। अशेष अंकुर / डॉ. विद्याभूषण
।। २८ ।। दो ग़ज़लें / रमेश कटारिया 'पारस'
।। ४४ ।। एक कवि की पूरी कविता / डॉ. वरुण कुमार तिवारी
।। ४५ ।। दो ग़ज़लें / चांद 'शेरी'
।। ४५ ।। दो ग़ज़लें / अनिल वर्मा
।। ४५ ।। यही वह सच है / ईश्वर सिंह बिष्ट 'ईशोर'

स्तंभ

।। २ ।। लेटरबॉक्स
।। ४ ।। 'कुछ कही, कुछ अनकही'
।। २९ ।। आमने-सामने / डॉ. उर्मिला शिरीष
।। ३३ ।। सागर-सीपी / डॉ. किशोर काबरा
।। ३८ ।। पुस्तक-समीक्षाएं

लेटर बॉक्स

'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर ०२ अंक मिला. स्तरीय और पठनीय सामग्री के संयोजन के लिए बधाई स्वीकारें. लघुपत्रिकाओं का नियमित प्रकाशन कठिन कर्म है. इस मुहिम को जारी रखिए. नये-नये लेखकों को जोड़कर, उन्हें मंच देकर आप दोनों, पति-पत्नी ऐतिहासिक कार्य कर रहे हैं. लघुपत्रिका की सार्थकता यही है कि वह अपने समय के कितने रचनाकारों को रोशनी में लाती है. कविताओं के चयन में थोड़ी निर्ममता बरतें.

राजेंद्र रंजन

समय प्रकाशन, आई/१६, शांति मोहन हाउस, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली - ११०००२

'कथाबिंब' निरंतर मिल रही है. कहानियों में मेरी बहुत रुचि नहीं है इसलिए लघुकथाएं और गीत-ग़ज़लें ही पढ़ लेता हूं. लघुकथाएं मुझे सभी अच्छी लगीं. आनंद शर्मा की ग़ज़ल, वृंदावन राय 'सरल' के दो-तीन दोहे और रास बिहारी पांडेय के दो गीत बहुत पसंद आये. उन्हें मेरी शुभकामनाएं और शुभाशीष दें.

गोपाल दास, 'नीरज'

जनकपुरी, मेरिस रोड, अलीगढ़ २०२ ००१

'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर ०२ अंक कुछ दिन पहले ही प्राप्त हुआ. प्रगतिशील चेतना के क्रांति-संदर्भों को सार्थक आयाम देती हुई कहानियों ने मन को काफी गहरे छुआ है. जहां श्री जयवंत डिमरी की 'दूसरा नरक कुंड' शोषण के विरुद्ध एक असहाय नारी के विद्रोह को प्रस्तुत करती है, वहां पुष्कर द्विवेदी की 'कल का मोर्चा' नारी के पक्ष में किये गये जीवट संघर्ष की महागाथा है. श्री सतीश दुबे कृत 'लखमी संग ग्यारह घंटे' का कथानायक भी जब चाय वाली की करुण कथा जानकर संकल्प लेता है कि वह चौकीदार को न्याय दिलाकर रहेगा, तो उसकी पृष्ठभूमि में ठेकेदार, राजनीतिज्ञ और शहरी लोगों के खोखले चित्र पूरी तरह बेपर्दा होने लगते हैं. कुछ यही स्थिति अमर स्नेह के 'पहला पत्थर' की भी है. यहां भी शासन-प्रशासन तंत्र के विरुद्ध एक सर्वहारा का कटिबद्ध होना नयी चेतना की प्रतिष्ठा का आधार बनता है. श्री कृष्ण सुकुमार की 'खून' कहानी संवेदनहीन स्वार्थी युग में मानवीय पक्षधरता का ही समर्थन करती है. वस्तुत: वांछित उद्देश्य के अनुरूप इस अंक की सभी कहानियां दमदार हैं. लघुकथाओं के अंतर्गत श्री विजय बजाज, डॉ. योगेंद्र नाथ शुक्ल तथा यादवेंद्र शर्मा की रचनाएं अधिक अच्छी लगीं. संपादकीय में प्रस्तुत चिंतन भी मन-मस्तिष्क को झिंझोड़ने में समर्थ रहा. आज के विसंगत राजनीतिक सामाजिक रूप पर आपने कम शब्दों में भी बहुत कुछ कह दिया है. हमेशा की तरह इस बार भी प्रस्तुत सार्थक एवं विस्तृत कृति-समीक्षाएं इस अंक की महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जायेंगी. शेष सामग्री भी ठीक-ठाक है. अस्तु...

डॉ. भगीरथ बडोले

२८६, विवेकानंद कॉलोनी, फ्रीगंज, उज्जैन ४५६ ०१०

'कथाबिंब' का ताज़ा अंक (जु.-सि. ०२) मिला. प्रभावी परंपरा का लगनशील निर्वाह करते हुए यह अंक भी लोकप्रिय रचनाओं से संयुक्त लगा. सर्वश्री कृष्ण सुकुमार, पुष्कर द्विवेदी एवं अमर स्नेह की सामयिक चिंताओं को उजागर करती कहानियां, काल-चक्र पर दस्तक करती जनकथाएं हैं. सर्वश्री 'चंद्र', योगेंद्र नाथ शुक्ल एवं सलीम अख़्तर की चमत्कृत करती लघुकथाएं भी ज़िंदगी को सूत्रों में पिरोती नज़र आयीं. कविता, गीत, ग़ज़लों का गुलदस्ता भी पत्रिका में बड़े करीने से सजाया गया है. समग्रत: में अनुभवशीलता की चमक है. बधाई शतश: !

मदन मोहन 'उपेंद्र'

सं. 'सम्यक', ए-१० शांति नगर, मथुरा २८१ ००१

'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर ०२ अंक मिला. 'दूसरा नरककुंड' से लेकर 'पहला पत्थर' तक पांचों कहानियां पढ़ गया. सबसे अच्छी कहानी 'खून' लगी. कहानीकार ने एक संवेदनशील बच्चे के माध्यम से बड़ों की दुनिया की असंवेदनशीलता और क्रूरता को बखूबी उजागर किया है. 'दूसरा नरककुंड' को आधा पढ़कर ही उसके अंत का अंदाजा लगाया जा सकता है. 'कल का मोर्चा' कहानी भी अच्छी है. 'पहला पत्थर' में देश की २० प्रतिशत और ८० प्रतिशत जनता का रूपक बांधकर बहुत कुछ कहने की कोशिश की है. अंत आशावादी है. 'लखमी संग सत्तरह घंटे' का ताना-बाना तो ठीक है, किंतु इसमें नितिन का 'बूंद बूंद' चाय पीना समझ में नहीं आया. चाय घूंट-घूंट पी जाती है. चाय सिप की जाती है. सुड़की भी जाती है, पर बूंद-बूंद... देखें पृष्ठ-२१ पर.

गीत-कविताएं-ग़ज़लें, लघुकथाएं अच्छी हैं. 'आमने-सामने' में रमेश कपूर ने अनेक स्थानों पर प्रभावित किया.

गोविंद सेन

१९३, राधारमण कॉलोनी, मनावर जिला-धार (म. प्र.)

'कथाबिंब' के माध्यम से जो साहित्य-चिंतन, संरक्षण एवं संवर्धन हो रहा है, वह अन्यत्र दुर्लभ है. कथा साहित्य में बिना खेमेबाजी के यदि कोई पत्रिका कार्यरत है तो वह है आपकी पत्रिका. अन्य विधाओं का भी यथोचित समावेश आपकी उदारता का परिचायक है. 'दूसरा नरक कुंड', 'लखमी संग सतरह घंटे' और 'पहला पत्थर' जैसी कहानियां हमें जीवन संघर्ष तथा एकाकी रहकर भी लड़ने का संबल प्रदान करती हैं. स्वच्छ भावभूमि तथा शैल्यिक कलाबाजियों से दूर ये कहानियां महत्वपूर्ण दस्तावेज़ बन गयी हैं. इनके रचनाकार तथा संपादक, सभी बधाई के पात्र हैं.

राजेंद्र वर्मा

सं. 'अविरल मंथन' ३/२१ विकास नगर, लखनऊ २२६ ०२२

'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर ०२ अंक मिला. 'खुला मंच' के अंतर्गत भाई आलोक भट्टाचार्य का लेख पढ़ा. लगता है उन्हें काफी पीड़ा पहुंची है. फिर भी मैं उन्हें संयम से काम लेने तथा सहज रहने की ही सलाह दूंगा.

डॉ. जयनाथ मणि, त्रिपाठी

सं. 'अंचल भारती', देवरिया-२७४ ००१ (उ. प्र.)

'कथाबिंब' लगातार उत्कर्ष की ओर है. उत्कृष्ट कहानियों के अलावा 'आमने/सामने' स्तंभ तो मेरा प्रिय स्तंभ है. हर बार किसी अच्छे लेखक का आत्मकथ्य आकर्षित करता है. लेखक के बारे में जानने की हम जैसे साहित्य प्रेमियों की प्रबल आकांक्षा ही होती है, शायद ! साक्षात्कार स्तंभ से भी उसी तरह साहित्यकार, सृजन, सामयिकता के बारे में जानने को मिलता है. इस बार कपूर साहब का आत्मकथ्य अच्छा था, उससे पूर्व राकेश कुमार सिंह का तो बहुत ही अच्छा.

शशिभूषण बडोनी

राजकीय सेंट मेरीज, चिकित्सालय, मसूरी (उत्तरांचल)

जुलाई-सितंबर ०२ का 'कथाबिंब' अंक आज ही मिला. हृदय से आभारी हूं.

ज़नाब बादशाह हुसैन रिजवी ने मेरी कहानी पर अपने पत्र में अच्छी समीक्षात्मक टिप्पणियां की हैं. आभारी हूं कि उन्होंने इस कहानी को इतनी गंभीरता से लिया. चूंकि उनका पत्र पाठकों की अदालत में रखा गया है अतः रिजवी साहब के प्रति पूरे सम्मान के साथ मैं भी उनके प्रश्नों के उत्तर उसी ज़गह पर देना मुनासिब समझता हूं.

मैं इस बात का कायल नहीं कि कहानीकार को सब कुछ कह ही डालना चाहिए. कुछ पाठकों की समझ पर भी छोड़ना ज़रुरी लगता है मुझे. जैसे कि घड़ी देख कर ट्रेन पकड़ने निकला शेरली स्टेशन के बाहर ही क्यों मौजूद था ? तो अभी ज्यादा समय नहीं गुज़रा. भयंकर कोहरे ने संपूर्ण पश्चिमोत्तर और पूर्व भारत को इस कदर ढक रखा था कि रेलगाड़ियों की तमाम पूर्वसूचनाएं गडमड हो गयी थीं. बहरहाल शेरली किस ट्रेन को पकड़ने गया, या ट्रेन पकड़ी क्यों नहीं, मैंने बाद में भी उससे कभी नहीं पूछा. गोया मैंने उसे देखा ही नहीं. कुछ बातें न कुरेदना ही अच्छा होता है. फिर, अपनी कहानी की विश्वसनीयता हेतु कोई कपोल कल्पित कारण कहानी में डाल देना मुझे गंवारा नहीं.

छः दिसंबर के बाद शेरली में आये बदलावों को तो शेरली का मानस ही बेहतर समझ सकता है. मैंने तो जो देखा-सुना-भोगा वह लिख डाला. यह कोई कल्पित कथा तो है नहीं कि अपने किन्हीं विचारों या पूर्वाग्रहों को बेचारे शेरली (या चरित्र ही कह लें) पर थोप दूं. वैसे इस परिवर्तन को (रिजवी साहब का फिर शुक्रिया) खुद रिज़वी साहब ने बेहतर शब्द दिये हैं, अपने ही पत्र के पहले पैराग्राफ में..."छः दिसंबर के बाद...असहाय हो गयी है."

तीसरी बात,...शेरली दाढ़ी रख लेने भर से कट्टर कैसे हो सकता है ? मैंने तो कहानी में कट्टर शब्द का प्रयोग किया भी नहीं. दाढ़ी हिंदू, ईसाई, सिख, पारसी कोई रख सकता है. कथा-परिस्थितियां और शेरली के संवाद उसकी परिवर्तित मनःस्थिति की जो सूचनाएं देते हैं, बस मैंने उन्हें पाठकों के समक्ष रख भर दिया है. निर्णय पाठकों पर है.

चौथा सवाल यह कि दुकान किस समुदाय वाले की थी ? मान लें मैं इसका जिक्र कर भी देता हो क्या यह प्रश्न भी पूछा जाता कि समोसे बनाने वाला कारीगर किस समुदाय का था ? या आगे यह कि समोसे का आटा, घी, मसाला, आलू किस समुदाय के दुकानदार से...भई हर चीज़ को हिंदू-मुस्लिम नजरिए से देखना ज़रुरी नहीं. वैसे इस नज़रिए की बाबत इसी अंक के संपादकीय में क्रिकेट के हवाले से कुछ धुंध साफ़ कर दी गयी है. मुझे नहीं लगता कि इससे बेहतर स्पष्टीकरण मैं दे सकता हूं. ज़रूरत भी क्या है ?

खाने से...प्रसाद खाने से परहेज़ की वज़ह ही तो वह ताला है इस कथा का जिसे हर प्रगतिशील व्यक्ति को खोलना है. शायद कथा का पुनर्पाठ इसमें कोई सहायता कर सके. पुनर्पाठ ज़रूरी इसलिए भी है कि रिज़वी साहब ने कहानी का शीर्षक 'नया चेहरा' की बजाय 'दूसरा चेहरा' लिखा है.

खुदा सलामत रखे, शेरली अब भी मेरा यार है. पर यह ज़रूर है कि पहले वह पटना के गोलघर के निकट हिंदू-बहुल इलाके में रहता था. अब मुस्लिम-बहुल इलाके फुलवारी शरीफ़ में किराये के मकान में ही रहता है.

बहरहाल, मैं शुक्रगुजार हूं भाई रिज़वी साहब का जिन्होंने इतने गौर से मेरी कहानी पढ़ी. फिर 'कथाबिंब' के पाठकों का भी शुक्रगुज़ार हूं जिन्होंने इस कहानी को पढ़ा, समझा और स्वागत किया. अंततः संपादक अरविंद भाई का भी आभार जिन्होंने अभिव्यक्ति के ख़तरे उठाते हुए इस कहानी को प्रकाशित किया. निश्चय ही उन्होंने कहानी की देह से ज्यादा आत्मा की पड़ताल कर ली थी. यह समझा कि दरअसल मेरा संदेश क्या है.

राकेश कुमार सिंह

'कंचनप्रभा', जयप्रकाश नगर, कतीरा, आरा, भोजपुर ८०२३०१ (बिहार)

चार दिन हुए 'कथाबिंब' मिले. तीन दिन तो मेरे प्रसन्नता में बीते, 'दूसरा नरककुंड', 'खून', 'कल का मोर्चा', 'लखमी संग सत्तरह घंटे' (जो इस अंक की सर्वश्रेष्ठ रचना मुझे लगी.) तथा सारी लघुकथाएं जब तक पढ़ता रहा, तब तक प्रसन्न रहा कि मेरी चिरपरिचित पत्रिका दिनों दिन निखर रही है, प्रगति कर रही है; पर आज 'खुला मंच' पढ़ कर मन खिन्न हो उठा ! एक मूर्धन्य विद्वान एवं सहृदय व्यक्ति, श्रद्धेय नंदलाल जी पाठक पर आलोक भट्टाचार्य के विचार पढ़कर मन व्यथित हो गया.

आलोक भट्टाचार्य जिस निंदनीय स्तर पर उतर आये हैं, उस स्तर से परिचित होने का दुर्भाग्य आज से पूर्व कभी नहीं मिला ! किसी भी कलमकार के लेखन से, विचारों से, उन विचारों की अभिव्यक्ति की शैली से असहमत होने का, उस पर टीका-टिप्पणी करने का अधिकार सभी को है; किंतु ऐसी टीका-टिप्पणी करते समय शालीनता की मर्यादा का उल्लंघन करने का अधिकार किसी को भी नहीं है ! माननीय पाठक जी पर कीचड़ उछालते हुए तथाकथित

(शेष पृष्ठ -४७ पर देखें)

कुछ कही, कुछ अनकही

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है. आज जो स्थिति है वह कल नहीं रहने वाली. आज बुरे दिन हैं तो देर-सबेर ये अवश्य फिरने वाले हैं. यही सोच हमें आगे ले जा सकता है. हमें खुशी के थोड़े क्षण दे सकता है, अन्यथा जीवन पानी के एक बुलबुले के सिवाय और क्या है ! आप हाथ पर हाथ धरे बैठे रहिए और अपने सामने बहने वाली समय की नदी के प्रवाह को देखते रहिए. लेकिन जीवट भरे अनेक लोग ऐसा नहीं करते, वे अपने प्रयास से समय की धारा को अपने अनुकूल बनाने की कोशिश करते हैं.

●

यह अंक वर्ष २००२ का अंतिम अंक है -- चारों अंक तीन-तीन महीनों के अंतर से आये हैं. हमें लगा था कि धीरे-धीरे यह अंतर कम होता जायेगा, पर अनेक कारणों से ऐसा संभव नहीं हो सका है. इस सबके बीच पाठकों और लेखकों से हमें भरपूर सहयोग मिलता रहा. हम सभी के आभारी हैं. विशेषकर उन रचनाकारों के जिनकी रचनाएं स्वीकृत हो जाने के बाद भी काफी समय से प्रकाशित नहीं हो सकी हैं.

अच्छी कहानी क्या होती है, इसके मापदंड सुनिश्चित करना बहुत मुश्किल है. यह कुछ ऐसा ही है कि आप संगीत के मर्मज्ञ न हों फिर भी कोई धुन, कोई गीत एकदम से मन में उतर जाये, तुरत अच्छी लगने लग जाये. कभी आपको गीत के बोल, तो कभी लय या फ़िर पूरा गीत ही पसंद आ जाये. बस ! ... और अब अंक में प्रकाशित कहानियों का ट्रेलर -- श्रीनाथ की कहानी 'धुरी' का नायक एक लेखक है. पत्नी और बच्चों की अनुपस्थिति में उसे लगता है कि योजनाबद्ध तरीके से वह लेखन में जुटा रहेगा, परंतु ऐसा होता नहीं-- पत्नी का आसपास होना एक धुरी सदृश्य है. अन्यथा सब कुछ अस्तव्यस्त हो जाता है. ए. असफल की कहानी 'त्रिभुज' काश्मीर में, सीमा रेखा पर तैनात एक युवा सैनिक की कहानी है जो देश के लिए लड़ रहा है, पर हालात ऐसे पैदा हो जाते हैं कि उसका दोस्त और प्रेमिका उससे दूर हो जाते हैं. 'नाम में क्या रखा है !' में राजेंद्र सिंह गहलौत पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी की अवसरवादिता को रेखांकित करते हैं -- समय के दबाव में आकर दोनों पीढ़ियों ने स्थिति को अपने-अपने ढंग से स्वीकारा ही है. 'कान्हा, माफ़ करना' एक अतिशय गरीब परिवार की कहानी है. मां, बच्चों को दिलासा देने के लिए आलुओं की ज़गह पत्थरों को देर तक उबालती रहती है और बच्चे इंतज़ार करते-करते भूखे ही सो जाते हैं. विवश हो, अंततः मां-बाप अपने ही एक बच्चे 'कान्हा' को बेचने के लिए तैयार हो जाते हैं. उर्मिला शिरीष की कहानी 'लौटते हुए' एक टूटे हुए परिवार की कहानी है -- उम्रदराज़ पति की टीका-टिप्पणी जब असह्य हो जाती है तो पत्नी, लड़की के साथ घर छोड़कर चली जाती है... और सब कुछ यहीं ठहर जाता है.

●

इक्कीसवीं सदी कैसी होगी, तीन-चार साल पूर्व इसकी परिकल्पना करना बहुत ही कठिन था. नयी सहस्त्राब्दी के स्वागत की तैयारियों के बीच 'वाई-टू-के' हौव्वे ने सबको परेशान कर रखा था. विश्व जब निर्विघ्न इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर गया तो जैसे जान में जान आयी. अनेक अविकसित देश जिनकी गिनती 'तीसरी दुनिया' में होती है तथा भारत जैसे विकासशील देश - इन सबकी सबसे बड़ी समस्या बढ़ती हुई जनसंख्या है. सारा ध्यान इसी में लगा रहता है कि कैसे इतने पेट भरे जायें ? किंतु अमरीका, जो स्वयं को विश्व का सरगना समझता है बरसों पहले से तैयारी कर रहा था. बहुत ही नायाब तरीके से सोवियत रूस को 'ग्लॉसनॉट' में उलझाकर उसे पूरी तरह कमजोर कर दिया. यह एक ध्रुवीय विश्व की दिशा में उठाया गया पहला कदम था. फिर आया पहला खाड़ी-युद्ध ! लोगों ने टीवी पर उसके दृश्य कुछ वैसे ही देखे जैसे रामानंद सागर कृत रामायण में युद्ध के सीन दिखाये जाते थे. २८ देशों की संयुक्त सेना ने युद्ध में हिस्सा लिया लेकिन सद्दाम हुसैन का बाल बांका नहीं हुआ.

ऐसा कहा जाता है कि एक समय था जब अंग्रेजी हुकूमत में सूरज नहीं डूबता था. यानी ब्रिटिश उपनिवेश पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए थे. पहले जो अंग्रेजों ने किया वही वर्तमान में अमरीका कर रहा है. संयुक्त राज्य संघ का कोई मतलब नहीं रह गया है. खुले आम अमरीका सारे विश्व में नरसंहार कर रहा है. ईराक से पहले वियतनाम, निकारागुआ, अल सल्वाडोर, चिली, इंडोनेशिया, कोरिया, अफ़गानिस्तान पर उसने हमला किया है. रूस के ख़िलाफ मुजाहिद्दीनों और तालिबानों को उसने अपनी कोख़ से पैदा किया और उनका इस्तेमाल किया. पहले जिन्न को पैदा करो और जब उपयोग ख़तम हो जाये, या जिन्न सर पर चढ़कर बोलने लगे तो उसे वापस बोतल में बंद करो और यदि न माने तो मार दो.

११ सितंबर के हादसे ने अमरीका को एक बहाना दे दिया और 'चील' (ईगल) ने एक झपाटे में मध्य-एशिया के एक बड़े भू-भाग पर कब्ज़ा कर लिया. 'मानव संहारक शस्त्रों' को खोजने के बहाने दोबारा ईराक की धरती को बेगुनाहों के खून से अमरीका ने रंग दिया. गद्दाफ़ी, ओसमा बिन लादेन या सद्दाम ये सब अमरीका की देन ही हैं. अमरीका का कहना है कि वह विश्व से आतंकवाद को ख़तम करना चाहता है. किंतु स्वयं वही सबसे बड़ा आतंकवादी है.

(कृपया शेष भाग पृष्ठ-४८ पर देखें)

धुरी

अपने आसन पर जमकर कहानी के अगले सफर पर चलने के लिए मैं अभी मन के घोड़ों की रास थाम ही रहा था कि कामवाली, मंदा हांफती हुई चली आयी और तूफानी चाल से बोली, 'अंकल, हमने सब्जी खरीद ली है, उन्नीस रुपये दे दो..., और बाजार से कुछ मंगवाना तो नहीं है ? जल्दी से लिस्ट बना दो. भइया साइकिल से जा रहा है, नहीं तो फिर हमें ही..., हां बीस रुपये दे दो खाली सब्जी के... प्रेस वाले को बाद में देना... अरे, गैस भी जाने वाली है. एजेंसी में फोन करो जल्दी, नहीं तो खाने की छुट्टी ! उसने हंसकर ताली बजायी और आंगन की ओर फर्राटा भरा. तभी गेट पर खट-खट हुई. मंदा दौड़ गयी. फिर आकर बोली, 'दूध वाला सौ रुपये एडवांस मांग रहा है... हुंह... अभी दस दिन भी नहीं बीते हैं महीने के... लाओ, नहीं तो टलेगा नहीं,' और वह रुपये लेकर दौड़ गयी.

मेरा सिर भन्ना गया. 'हे भगवान !' मैं बड़बड़ाया 'हर महीने एडवांस चाहिए हर किसी को. कहां से लाऊं इतने पैसे ? ...फिर अभी गैस सिलिंडर भी तो आना है' ...कहानी को वहीं छोड़कर मैंने फुटकर सामान की लिस्ट बनायी और उसे सौ रुपये के नोट के साथ मंदा को थमाकर सिर पकड़ लिया.

अजीब गदर मचा रहता है घर में. ज़िंदगी में न कोई ठहराव है, न चैन. कहानी से कितना अलग है सभी कुछ - गति, लय, उत्कर्ष. सोचा था कि तीन दिन की छुट्टियों में बेखटके उस अधूरी कहानी को पूरा कर लूंगा जो अब तक मुझे छकाती और चिढ़ाती आयी है. उसके बाद आगामी वर्षों के लिए लेखन-कार्यक्रम को सुनिश्चित करके उसे समयबद्ध सूची के रूप में डायरी में अंकित करना होगा. परिवार के साथ रहने के बीच कार्य-योजना बनाने की बात मन में ही नहीं आती. तब न इतना अवकाश मिलता है और न मन को कभी इतनी दूर और ऊंचा उड़ने की आज़ादी. लेकिन मेरा सारा सोचना-विचारना धरा रह गया.

मैं निष्क्रियता की स्थिति में कुहनी को मेज पर टिकाये बैठा था. अधमुंदी आंखों के आगे पता नहीं कब अपने घर-संसार के चरित्र स्लाइड की तरह सरकने लगे - अख़बार वाला, प्रेसवाला, सब्जीवाली, दूधवाला, मंदा, गैस एजेंसी, मंदा का साइकिल सवार भइया...

फर्श में से धमक उठती मंदा फिर भागती आयी और कुछ हिचकाती हुई बोली, 'आंटी दूध वाले से कहना भूल गयीं कि कितना कम लेना है. आज तो वह डेढ़ लिटर दे गया है, कल से कितना आयेगा ? आप तो गर्मी में ठंडी नींबू की चाय पीते हो. अगर मलाई निकलवानी हो तो एक लिटर, नहीं तो कल से आधा लिटर...'

मैंने झट कहा, 'जितना जी करे ले लो, लेकिन मुझे डिस्टर्ब न करो, समझीं ?'

❐

सरिता, पायल और पराग - तीनों मां, बेटी-बेटे इन गर्मियों में कन्नौज-लखनऊ-हरिद्वार की पारिवारिक घुमक्कड़ी करेंगे, यह जानकर मैं मगन हो गया था. लंबी छुट्टी, लंबी आज़ादी... अनचाहे परिचितों, संबंधियों से मुक्ति... भूले-बिसरे कथा और संगीत-मित्रों के साथ संवादों के तार जुड़ने की सुविधा... इतवार की सुबह वी.सी.पी. पर क्लासिक फिल्में देखने और शाम को पुस्तकालय जाकर नवागत पुस्तकों के आवरणों को छूने का रोमांच एक बार फिर जाग उठा. घर में कोई छेड़ने और रोकने-टोकने वाला नहीं. गृहस्थी की खिटखिट, कांय कांय नहीं. यह आनंदवन कुछ दिनों के लिए मेरा होगा, सिर्फ मेरा...

श्रीनाथ

मैं नारी-समानाधिकार का पक्षधर रहा हूं, किंतु मुझे प्रायः लगा है कि प्रतिफल के रूप में कृतज्ञ सहगामिनी की सद्भावना और अनुकूल व्यवहार पाना मेरी नियति में नहीं है. सारा जीवन मैं गृहस्थी के लिए खटता रहा हूं, मां और बेटे-बेटी की सेवा में लगा रहा हूं, लेकिन न जाने क्यों उनमें से किसी के भी मन में अपने लिए रत्ती भर गुंजायश नहीं बना सका हूं. जब कभी मेरे और उनके बीच कोई संवाद हुआ है तो उन सभी की ज़रूरतों और सुख-सुविधाओं को जुटाने से जुड़े हुए सवालों को लेकर. रुपये और सिर्फ रुपये, बस. गृहस्थी का ख़र्च चलाने के लिए मैं पूरी तनख्वाह सरिता के हाथों में रख देता हूं. अपने शौक (और शौक भी क्या - कुछ कथा-संग्रह, कैसेट्स और एक कथा-पत्रिका) और निजी ज़रूरतों के लिए मैं जो कुछ भी लेखन से जुटाता हूं, उस पर भी सबकी गिद्ध-दृष्टि लगी रहती है. इतने पैसों का वे क्या करेंगे, इसे लेकर मैं सिर नहीं खपाता. मैं अकेले कमरे में धूनी रमाये रहता हूं और वे ख़र्च करने की स्कीमें बनाया करते हैं. पायल को टेंपो में बैठकर माल रोड जाना है किताब ख़रीदने. सरिता को ऊन लेना है. इसी बहाने मां-बेटी का घूमना हो जायेगा. पापा को कहां फुर्सत है ? अब पराग बाबू अकेले घर में क्या करेंगे, वे भी बुक स्टोर से कोई कैरियर गाइड लेते आयेंगे. जाते-जाते पूरी टीम 'लिखने के लिए शांत वातावरण दे जा रहे हैं आपको' का भाव जताकर

छोड़ जाती है मुझे और भी अशांत करके. इन्हीं परिस्थितियों के बीच मैंने निष्कृति का उपाय सोचा था कि परिवार-प्रवास का उपयोग मैं विवाह-पूर्व की निश्चिंतता और दायित्वहीनता से भरपूर कालखंड को खोजने और उसे सार्थक सक्रियता द्वारा स्मृति का अमिट अंश बनाने के लिए करूंगा. तीन दिन की छुट्टियां भी मैंने इसी ध्येय की परीक्षा के लिए ली थीं.

❐

सुबह मंदा के आने से पहले मैं नाश्ता करके अपने कर्मक्षेत्र में प्रवेश करता हूं. मेज़ पर अगले डेढ़ महीने के लेखन की कार्ययोजना है जो मैंने पिछली रात सोने से पहले बनायी थी. समय सीमा का निर्धारण करके लिखना मैं अपने लिए बहुत ज़रूरी समझता हूं. मैं अच्छी तरह जानता हूं कि सिर्फ इसी तरह मैं अपने सबसे प्रिय शत्रु 'आलस्य' को वश में किये रख सकता हूं. ऐसे तो काम के घंटे मस्ती में लौटने और ख़याली पुलाव पकाने में बीतते जाते हैं.

पुलाव की देगची में इस पल भी खदबद हो रही है. वह अधूरी कथा पूरी हो जाये इस छप्पर फाड़ अवकाश में. अपनी पसंद की विश्वप्रसिद्ध कहानियों के अनुवाद की श्रृंखला की अंतिम रचना को मैं इस या उस बहाने टालता रहा हूं. इस बार नहीं तो कभी नहीं, यह मैं बखूबी जानता हूं. रचनाओं के प्रकाशन की समस्या मेरे सामने नहीं के बराबर है. खुद मैंने ही निराश और क्षुब्ध किया है अपने गुण-ग्राहकों को. बालसखा और आज तक सुहृद मित्र रहे आनंद शुक्ला की प्रकाशन और वितरण व्यवसाय में गहरी पैठ है. मेरी प्रतिभा और क्षमता के संबंध में वह सदा ही आश्वस्त रहा है.

ठीक है. तो फिर हो जाये आज अनुवाद-संग्रह के अंतिम अंश का समापन. मैं अपने सनातन शत्रु को मुंह चिढ़ाकर लेखन-मनोरथ को हरी झंडी देता हूं.

टिंग-टांग ! गेट पर ज़ोर से घंटी बज उठी.

'कौन ?' मैं झुंझलाकर लपकता हूं और फिनायल बेचने वाली के 'आकर्षक' उपहार-प्रस्ताव को झटकाकर वापस मोर्चे पर आ जमता हूं. अधूरी पांडुलिपि को फाइल से निकालकर मैंने उसे एक बार फिरसे देखना शुरू किया है, ताकि घर में अभी थोड़ी देर बाद शुरू होने वाली हलचल और स्वर-संग्राम मेरे उद्यम की गुणवत्ता पर भारी न पड़ें.

'अंकल !' दरवाज़े पर एक अपरिचित युवक-स्वर उभरा. मैंने बिना उत्तर दिये सिर थाम लिया. लगता है, आज भी मुहूर्त नहीं है लिखने-लिखाने का. जो काम मुझे जीवन में सबसे अच्छा लगता है, बस वही नहीं करने देना चाहते हैं लोग.

'अंकल !' वह युवा स्वर लगभग कानों पर फट पड़ा. मैंने चिहुंककर सिर उठाया देखा, हाथ में टेस्टिंग लैंप और टूलबॉक्स लिये एक युवक मेरे सामने खड़ा था. ओह, लगता है मैंने गेट पर कुंडा नहीं लगाया था.

श्रीनाथ

५ अगस्त, १९४०, कानपुर

कृतियां : 'उपहार', 'मुक्तिपथ,' 'कंधे' (कथासंग्रह), 'मंजिल' (लघु उपन्यास संग्रह), 'पूत के गांव' (लघुकथा-संग्रह), 'घमंडी सिंह का इलाज' (बालकथा-संग्रह).

अनुवाद : 'दुजॅन तॅखॅन' (श्रीमती शिखा विश्वास-बांग्ला कथाएं) 'शॉर्ट स्टोरीज फ्रॉम यस्टर्डे एंड टुमॉरो' (विश्वप्रसिद्ध अंग्रेजी कथाएं).

संप्रति : कथा-लेखन.

मेरी अरुचिकर भंगिमा देख युवक विचलित हुआ, फिर विवशता प्रदर्शित करके बोला, 'आंटी ने कंपलेंट लिखवायी थी. आंगन की वायरिंग और स्विचबोर्ड चेक करके नयी फिटिंग लगवाने के लिए कहा था. आज करना है अंकल... या फिर किसी दिन?'

'अब आ गये हो तो काम करके जाओ... धनीराम !' मैंने अपना काम छोड़कर नौकर को आवाज़ लगायी और बिजली वाले को उसके साथ भेज दिया. अच्छा ही है, करेंट लगने का ख़तरा टलेगा हमेशा के लिए. फिर ये फिटिंग और रिपेयर वाले जल्दी कहां पकड़ में आते हैं ?

बिजली-प्रकरण के बाद मैंने मेहनत करके अनुवादित अंश का टूटा सिरा ढूंढ़ निकाला और शब्दकोश वग़ैरह सहेजकर अपनी साधना में गहरे उतरने का उपक्रम किया. ज़रा-से अभ्यास से मूल कथा के बिंब आंखों के आगे उभरने लगे...

उफ ! कोई गेट पीटे डाल रहा था, मानो शिकारी कुत्तों से बचता हुआ कोई व्यक्ति शरण चाह रहा हो. 'कौन है !... रुको... आ रहा हूं !' मैं नियंत्रण खोकर चिल्लाया. 'गेट तोड़ डालेगा क्या !' उठना चाहकर भी मैं बैठा रह गया. जानता था, असभ्य आगंतुक से अनियंत्रित व्यवहार करने के बाद मैं काफी देर तक असामान्य रहूंगा. लिखना-पढ़ना सब धरा रह जायेगा.

मंदा ने जाकर गेट खोला. मैंने अनुमान लगाया, परिचित व्यक्ति तो निश्चय ही नहीं होगा, वरना इस तरह शोर...

मंदा एक फोटोग्राफर को साथ लेकर लौटी. 'आप ?' मैंने विस्मय से उन सज्जन की ओर देखा.

'मैं "दैनिक सवेरा" से आया हूं'. फोटोग्राफर युवक ने कार्ड बढ़ाकर कहा, 'विकास दादा ने भेजा है. वे आपका इन्टरव्यू ले गये थे. आप कहें तो कुछ स्नैप्स ले जाऊं. तैयार होना हो तो समय ले लीजिए, वरना ऐसे ही... नेचुरल पोज़ में तो हैं आप अपनी स्टडी में... लिखते हुए.' उस अस्त-व्यस्त और विक्षुब्ध दशा में जितना सहज रह सकता था मैं, उसी दशा में मैंने कुछ पोज़ दिये. धन्यवाद कहकर वह विध्वंसक चला गया.

मैंने कमरे के दरवाज़े पर परदा कर दिया और मंदा-धनीराम की टीम को मोर्चा संभालने को कहकर राइटिंग पैड उठा लिया. दोपहर हो चली थी. भोजन में डेढ़-दो घंटे लगने थे अभी. तब तक ज्यादा नहीं तो दो पृष्ठ पूरे हो सकते थे.

'आंटी ऽऽऽ!'...आंटी...देखो कौन आया है !' गेट पर से कोई सुरीला संवाद गूंज उठा.

'कौन ?' मैंने तड़पकर अनचाहे आगमन के प्रति जिज्ञासा व्यक्त की और परदा हटाकर अगवानी करने के लिए कदम बढ़ाये.

'अंकल !.. आपने पहचाना मुझे ?' एक सुंदर-स्वस्थ युवती ने उल्लास में भरकर संबोधित किया मुझे, 'मैं नीता हूं - पुरानी कॉलोनी वाली आपकी प्रिय भतीजी !' जब तक मैं उसे पहचान पाऊं, वह मेरे पैर छूकर दो अन्य महिलाओं और एक किशोर को लेकर लहकती हुई भीतर चली आयी.

'ओह नीता... तो तुम हो... म्यूज़िक टीचर ! अरे, तुम तो पहचानी नहीं जातीं. कितनी बदल गयी हो !' मैं जैसे चहक उठा अतीत के उस स्निग्ध परिचय के पुनर्जीवन के प्रभाव से, भाव विन्यास के भंग होने से उपजी हताशा और खिन्नता को भूल कर. नीता ने अपनी आंटी और भाई-बहनों के न होने पर तनिक निराशा जतायी, फिर कमरे में आकर साथ वालों का परिचय कराया - ये मां, ये ममेरी बहन सोनिया और यह मौसेरा भाई वीनू. फिर उसने बैग से एक निमंत्रण-पत्र निकालकर मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, 'अगले इतवार को आपकी दुलारी नातिन गोलू के जन्मदिन की पार्टी है. आंटी तो हैं नहीं, इसलिए आपको ज़रूर-ज़रूर आना है. मैं सुबह फोन कर दूंगी उस दिन, ठीक ?' यह कह कर उसने मुझसे वादा करवा लिया. यह भी कहा कि आप नहीं आयेंगे तो मैं कॉलोनी में मुंह दिखलाने लायक नहीं रहूंगी... और गोलू तो आपको देखकर नाच उठेगी.

इतना आत्मीय, प्रिय और कोमल आमंत्रण. तीन बार हां कहने पर ही मुक्ति मिली. मैंने राहत की सांस ली, पर छुटकारा कहां था अभी ? 'मां, तुम्हें बताया था न कि अंकल कितनी अच्छी कॉफी बनाते हैं ?' नीता ने मेरी ओर मुग्ध भाव से देखते हुए और मां की वर्जना को निष्प्रभावी करते हुए कहा, 'अंकल, आज तो मैं तिवारी का समोसा और आपके हाथ की कॉफी पिये बिना नहीं टलूंगी.' मैं अपनी विवशता और अनमनेपन को झटककर भीतर चला गया और धनीराम को तिवारी स्वीट हाउस के लिए रवाना करके कॉफी की व्यवस्था करने लगा. मंदा मुस्कुराने लगी - अंकल के हाथ की कॉफी.

नाश्ते और कॉफी के बीच नीता ने हम दोनों परिवारों के बीच संबंधों से जुड़ी हुई यादों को कुरेदना-चुभलाना जारी रखा. हंसने-हंसाने का दौर चला. मैंने एक बार घड़ी देखी- साढ़े बारह. मेरे टाइमटेबुल की दुर्गति हो चुकी थी. लिखने का समय और उत्साह शेष हो चला था.

मुझसे दिन और समय याद रखने को कहकर नीता चली गयी. मैं मेज पर फैले हुए कागज़ पत्र समेटने लगा. उसी समय फोन की घंटी बज उठी. रिसीवर उठाते समय मैं परम निर्लिप्त मुद्रा में था. खेल समाप्त होने की सीटी तो बज ही चुकी है. अब चाहे कितने गोल कर ले कोई, क्या फर्क पड़ने वाला है.

फोन पर ठेकेदार महोदय थे. श्रीमतीजी ने अपने देवर के प्रताप से कभी लखनपुर आवास योजना में एक छोटे-से भूखंड का स्वामित्व प्राप्त किया था. बीती नवरात्रि से उस पर काम भी शुरू हो गया था. पहले चरण में बाउंड्री, गेट और एक कमरे का ढांचा बनना तय हुआ था. रजिस्ट्री कैन्सिल होने की नौबत न आने पाये, इसके लिए देवीजी जिस ठेकेदार से मिलकर सारा प्रबंध कर गयी थीं, उसे सैनिटरी फिटिंग्स के लिए कुछ रुपयों की ज़रूरत पड़ रही थी. मैंने आश्वस्त किया, 'कल सुबह किसी को भेज देना, चेक ले जायेगा.' ठीक है, भेज दूंगा... लेकिन आप भी महान हैं, वह हंसकर बोला, 'आपको उसे देखने की फुर्सत नहीं है !' 'मेरे पास समय नहीं है,' मैंने गंभीर बने रहकर कहा, 'जिसका मकान है, वही आकर देखेगा और आपकी मेहनत की परख करेगा.' 'फिर भी, उनके आने से पहले आप एक बार आकर घूम तो जाइए. यहां आपके लायक बहुत कुछ है. क्या पता, कहानी के लिए ही कुछ...' 'आऊंगा कभी... शुक्रिया,' कहकर मैंने ठेकेदार की चपलता पर रोक लगायी और फोन रख दिया.

❐

मैंने दोपहर का खाना खाकर विश्राम करने, अख़बार पढ़ने का नियम बना रखा है. इस बीच नींद आ जाये तो ठीक, वरना ठीक तीन बजे आंखों पर पानी के छींटे मारकर एक बार फिर अपने आसन पर आ जमता हूं. इस नियम का भरपूर लाभ मंदा और धनीराम को मिल जाता है. वे लोग भी निश्चिंत होकर घर चले जाते हैं और शाम पांच बजे की चाय देने तक आराम कर लेते हैं.

मैं तीन बजे मेज़ पर जा पहुंचा और कथा के टूटे क्रम को सहजता से जोड़ने के यत्न में आंखें मूंदकर बैठ गया. विचारों की उथलपुथल को शांत करने के लिए और लेखनी-अवरोध को तोड़ने के लिए मैं नोटबुक के पीछे कुछ लिखने-काटने लगा. उस विचित्र कार्य व्यापार को रोक मैंने गौर से देखा, कागज़ पर अनजाने ही

हर बार 'सरिता' शब्द कई तरह से लिखा गया है मेरी लेखनी द्वारा. तभी ध्यान आया कि मैंने इतने दिनों में एक भी फोन नहीं किया है. उन लोगों की खोज़-ख़बर लेने के लिए. नहीं, मैंने सिर झटका. फोन पर कितनी-क्या बातें हो पायेंगी. पत्र लिखा जाये खूब लंबा. सरिता के अलावा बड़े हो रहे बच्चों को भी बहुत अच्छे लगते हैं उसके पत्र. ठीक है, मैंने अपने निश्चय पर मुहर लगायी और पैड संभाल लिया...

'प्रिय सरिता !

बड़ी मजबूरी में तुम्हें पत्र लिख रहा हूं. मजबूरी भी है, पछतावा भी. बेपरवाही के खोल में लिपटे, हर अपने आप मिल जाने वाली अच्छाई को बस किसी तरह अपना लेने वाले मेरे स्वभाव की तहों में दुबके बैठे इस पछतावे और अपराध-भाव ने तुम्हारी गैरहाज़िरी में अपनी पहचान करायी है और खूब करायी है. दर्पण पर जमी हुई धूल के साफ होते ही प्रतिबिंब झलकने लगा है, जीवन-यथार्थ का प्रतिबिंब.

अपनी व्यस्तता और परिवार की उलझनों के बीच मैंने अक्सर कड़वी और तीखी बातें कही हैं तुमसे, तुम्हारी शिक्षा, दीक्षा, स्वभाव और तुम्हारे परिवार वालों को लेकर खूब ताने कसे हैं, व्यंगवाण चला, चलाकर खूब आहत किया है तुम्हें. तुम्हारे इस सुव्यवस्थित और लकदक करते घर में रहना मुझे अपने अधिकार के बाहर लगता रहा है. हर शनिवार को अथवा तीज-त्यौहार वाले दिन तुम्हें पकवान बनाते और गुलदस्ते सजाते देख मैं टोक दिया करता था - आज कौन आने वाला है ? किसकी प्रतीक्षा है तुम्हें ? क्यों बेकार में खटती रहती हो अनजाने, अनचाहे अतिथियों के सत्कार के लिए ? तुम हंसकर रह जातीं या कभी प्रभाती गा उठती थीं-

'...फूटा प्रभात फूटा विहान
बह चले रश्मि के प्राण, विहग के गान
मधुर निर्झर के स्वर
झरझर झरझर... ' और कभी एक गुलाब मुझे देकर कहती थीं - 'तुम और मैं जीवित हैं एक-दूसरे की सांसों और धड़कनों में, खुश हैं, स्वस्थ हैं... यही तो उत्सव है जीवन का, यही तो वह अतिथि है जिसके अतिरिक्त किसी और के आगमन की चाह नहीं रह जाती... '

जिस व्यक्ति के जीवन में कर्म और अथक श्रम ही सब कुछ हो, परिवार के प्रति दायित्व बोध ही एक मात्र जीवन मूल्य हो, वही व्यक्ति घर बसाने को जीवन की सबसे बड़ी भूल समझ बैठे, इससे गंभीर विडंबना क्या हो सकती है ? तुम्हारा मेरे प्रति दिनोंदिन असहज और उदासीन होते जाना, पायल-पराग द्वारा मेरे लेखन और जीवन के प्रति करुणाजनित उपहास-भाव रखना और यांत्रिक व्यवहार करना, मुझे इसी निष्कर्ष की ओर लिये जा रहा था कि गृहस्थ होने से बड़ा पाप और कोई नहीं है. दफ्तर जाने और लिखने-पढ़ने के काम में घंटों बंधक बने रहकर मैं परिवार के लिए ही तो समर्पित रहा करता था, किंतु मन-ही-मन सोचता था कि धीरे-धीरे मैं घाट और चिता की ओर पग बढ़ाता जा रहा हूं. यही एक बात मेरे मन में गहरे बैठ गयी थी. यही एक प्रत्याशा, यही एक अपेक्षा, बाकी सब झूठ, कठपुतली का खेल लगता था. बच्चों को मैं स्वार्थी समझने लगा था. इतनी जरा-सी उम्र में वे अपने कैरियर और अपनी निजी पहचान को साथ लेकर अपने अपने खोलों में घुस गये थे. उनके पिता उनसे क्या आशा रखते हैं, उनकी खुशी किसमें है, उनका भविष्य कैसा होगा या होना चाहिए, इन सब बातों के बारे में सोचकर वे अपने वर्तमान को संकट में नहीं डालना चाहते थे. कम-से-कम मैं तो यही समझने लगा था.

अपने चारों तरफ देखकर आज समझ में आता है सरिता कि तुम अपने समाज की कोई अनोखी महिला नहीं हो. आज तो हर परिवार में जैसे चलन ही हो गया है कि स्त्री अपने पति के लिए कुछ करे या न करे, अपनी संतान के लिए सभी कुछ करती है.

तुम अगर इस गृहस्थी को अकेले दम पर न संभाले रहती तो मेरा लेखन चलता रहता या नहीं, कहना मुश्किल है. संसार में धन और पद-प्रतिष्ठ ही सब कुछ नहीं है, यह सच्चाई मेरे जैसे सफलताकामी बुद्धिजीवी के गले कम उतरती है. मेरे अनजाने ही इस गृहस्थी की गाड़ी को लीक पर चलाये रखने के लिए तुम क्या-कुछ करती हो, इसे अगर गणना करके देखा जाये तो मेरा योगदान पांच और दस प्रतिशत के बीच ही बैठेगा, अधिक नहीं. शेष नब्बे प्रतिशत दायित्व संभालने का प्रयास करे हुए पिछले तीन दिनों में मेरी हालत पागलों जैसी हो चली है. दोपहर में कितना आराम कर पाती थीं तुम, इसका आभास मुझे होने लगा है. नौकर-महरी, घंटी-खटखट, टेलीफोन, फेरीवाले और 'भंडारा कराने वाले' मुस्टंडे - सब जकड़े रहते थे तुम्हें पूरे दिन. कितनी असहाय, पर कितनी धैर्यवान और साहसी हो तुम, यह जान-समझकर मैं गर्व अनुभव कर रहा हूं तुम्हारे प्रति.

इस समय घर में कोई नहीं है. हर ज़गह घूम-घूमकर तुम्हारी, पायल और पराग की गतिविधियों को और ठहरी हुई स्मृतियों को कल्पना में सजीव करने का प्रयास कर रहा हूं. घर में रहने वाले न हों तो अजीब-अजीब सी आवाजें गूंजा करती हैं सूनेपन में. इस पल शांति है हर ओर. यह शांति निश्चिंतता और अवसर के भरपूर उपयोग की ओर ले जा रही है या वैराग्य की ओर, क्या पता. इस अकेले सूने घर में पत्नी और संतानों के बिना पूर्ण स्वतंत्र और आत्मनिर्भर होने की मरीचिका को तोल रहा हूं कर्तव्यनिष्ठ और समर्पिता गृहिणी के पूर्णता-बोध से. उसकी आत्मविस्मृत और श्रम-सक्रिय भंगिमाओं की स्मृति से आंखों की कोर भीग उठती है. मन मानों कह रहा है कि आज तक जो रहस्य रहा, वह इन कुछ व्याकुल, अनुतप्त पलों में अपने आप ही प्रकट हो गया है.

तुम्हारे साथ मैं झगड़ता हूं - कम नहीं, बहुत. तुम नहीं हो तो सोचता हूं कि झगड़ा सिर्फ तुम्हारे साथ किया जा सकता है. मैं जिस तरह तुमसे झगड़ता हूं, उस तरह मंदा और अन्य किसी से तो नहीं. झगड़ा ही प्रेम है, अधिकार है - वह बात मैं तुम्हारे सामने होने पर उस तरह कहां समझ सकता था ?

सोचा था कि इतनी लंबी और सुप्रतीक्षित स्वाधीनता का मैं जमकर उपभोग करूंगा. अब सोचता हूं कि तुम सब कब लौटोगे और यह घर फिर कब जीवन की गतिमान नौका के लिए प्रशांत सरिता-जल का रूप लेगा.

सभी लोग ठीक से रहना, मज़े करना, मिलना-घूमना. बच्चों का जो मन करे, उन्हें वैसा करने देना.

शेष शुभ !

सप्रेम,

समीर.

पत्र लिखकर मैं खिड़की से नज़र आते गुड़हल के पेड़ को और हवा के झोंके खाकर नाचते हुए लाल फूलों को देखने लगा. उन्हें झूमते-लहराते देख मैंने तय किया, आज कुछ और नहीं करूंगा. बीच-बीच में निठल्लापन भी अच्छा लगता है. फिर इतने दिन, इतने वर्ष लिखना चलता ही रहा है घड़ी के कांटों-सा गोल-गोल घूमने जैसा. सब व्यर्थ ही रहा है जैसे. सारा लेखन मन की शून्यता में से हुआ है, जबकि आज तृप्ति और पूर्णता भर गयी है मन के हर कोने में. सुबह से कितने उपद्रव हुए थे इसी मन में. पत्नी और बच्चों की भूमिकाओं को विरूपित प्रतिबिंबों में देखकर मैंने खुद को कितना आहत किया है, यह सोचकर मुझ पर स्मिति फूट पड़ी अपने-आप ही.

धनीराम ने परदा हटाकर पूछा नाश्ते और शाम के खाने के लिए. 'जो तेरी खुशी हो बना ले भैया,' कहकर मैंने उसे चकित कर दिया. मेरे व्यवहार की धूपछांह देख वह हंस पड़ा और दूर लपक गया.

हंस मैं भी रहा हूं. निःशब्द आनंद की हंसी. इस संसार के धूमिल और वोझिल विस्तृत पटल से मेरा गंभीर परिचय रहा है. आज उसी धूमिल पटल पर एक कांतिमान छवि उभर रही है. क्षण-क्षण मुखर होती वह नारी छवि सरिता की है - नितनवीना सुहासिनी सरिता की.

२१८/५, जे. के. कॉलोनी,
जाजमऊ, कानपुर- २०८०१०.

लघुकथाएं

तपती ज़िंदगी

✍ रामशंकर चंचल

हलवाई की भट्टी सा तपता दिन, मातम मनाते से खामोश वृक्ष और उन पर बैठे धूप के आतंक से भयभीत चीखते-चिल्लाते कौवे, यहां से वहां तक जंगल पूरा उदास, खामोश. धरती पानी के अभाव में फटी-फटी सी आसमान को घूरती, गायें बीमार सी रंभातीं, दौड़तीं. हर वर्ष गर्मी के इस मौसम में गांववाले काम की तलाश में सुदूर अंचलों में निकल जाते अपनी बीवी और बच्चों को छोड़कर. झीतरा भी अपनी बीवी और दोनों मासूम बच्चों को छोड़ चल दिया था काम की तलाश में शहर. बीवी-बच्चे चिलचिलाती तेज, धूप और गरम हवाओं के बीच झुलसते-मुरझाते प्रतीक्षा में थे झोपड़े के मालिक झीतरा की. कब वह काम से लौट आयेगा ?

इधर झीतरा दिनभर चिलचिलाती तेज धूप में कोलतार की गरम-गरम सड़कों पर नंगे पैरों उठाये, पसीना बहा लगा रहता मजदूरी में. माह, दो माह की मजदूरी समेट खुशी-खुशी कुछ कपड़े, नमकीन व मिठाई ले वह लौटता है गांव में. झीतरा घर के आंगन में खड़ा प्रतीक्षा करता है अपने बच्चों की कि वे दौड़कर आयें और खुशी से लिपट जायें उससे.

पर ऐसा नहीं हुआ, बच्चे घर के भीतर से, लू में लिपटे-तपते आंगन में खड़े अपने बा (पिता) को निहारते हैं. खटिया पर लेटे-लेटे उनमें ताकत नहीं...उठें, खुशी से झूमें और लिपट जायें अपने बाप से...

१४५, गोपाल कॉलोनी, झाबुआ ४५७६६१ (म. प्र.)

दूरदृष्टि

✍ मनोज सेवलकर

नेताजी के भाषण में झूठे आश्वासनों की भरमार से क्रुद्ध एक युवक सभा समाप्त होते ही मंच पर पहुंचा तथा एक झन्नाटेदार चांटा नेताजी के गाल पर रसीद कर दिया. वहां उपस्थित नेताजी के चमचों ने युवक की पिटाई प्रारंभ कर दी. तभी नेताजी ने बीच-बचाव कर युवक को बचाया तथा नाराज़गी का कारण जानना चाहा.

युवक ने आग्नेय नेत्रों का परिचय देते हुए नेताजी से पूछा- "आप जो कुछ बोल रहे हैं, सब झूठ है. यह बताइए, आप मुझ जैसे युवा बेरोजगारों के लिए केवल झूठे आश्वासन देने के अलावा और क्या कर रहे हैं ?"

"अरे भाई शांत हो जाओ हमारे पास तुम्हारे लिए काम है. तुम औरों की चिंता क्यों करते हो ? तुम आज से ही हमारी सिक्योरिटी फोर्स में शामिल हो जाओ और मुंहमांगी पगार पाओ."

युवक ने स्वीकृति दे दी और विदा ली.

उनके इस व्यवहार से नाराज होकर उनके प्रमुख पी. ए. ने प्रश्न किया - "सर ! उस नौजवान ने इतनी बदतमीजी की और आपने उसे अपने सिक्योरिटी फोर्स में शामिल कर लिया ?"

"तुम भी एकदम बुद्धू हो. अरे जो लड़का मुझे भरी सभा में चांटा मार कर अपने साहस का परिचय दे सकता है, वफादार जानवर बनने पर वह क्या कुछ नहीं कर सकेगा ?" नेताजी ने दूरदृष्टि का नक्शा पी. ए. के सामने रखा और पी. ए. नेताजी के दूरदृष्टि के सूत्र को समझकर उनके पैरों पर झुक गया.

२८९२ "ई", सुदामा नगर, इंदौर-४५२००९.

कहानी

त्रिभुज

हर रोज की तरह सुबह हुई. आलोक यूनिट में लौटने को था कि ठिठक गया. देहरी पर किवाड़ थामे अलसाया-सा एक बच्चा खड़ा था. उसने अनायास हाथ बढ़ा दिया, तो बच्चे ने भी उल्टे हाथ से आंख मलते हुए सीधा उसकी तरफ किया. कुतूहल में आलोक का दिल ही उछल पड़ा. किंतु वह दो कदम आगे बढ़कर एकदम झटका-सा खाकर ठहर गया. गैलरी के भीतरी द्वार पर परदा उठाये शायद बच्चे की मां झांक रही थी ! आलोक का हाथ नीचे गिर पड़ा. वह कनखियों से इधर-उधर और सीधी नज़रों से नीचे देखने लगा. देहरी के बाहर नाली को छूती बच्चे की एक चप्पल पड़ी थी. उसने झुक कर उठाई और मुस्कराते हुए अंदर फेंक दी. फिर, वह तंग गलियों से गुज़रता चला गया.

बच्चा मां के साथ अपने घर वापस जा रहा था. दरअसल, रात को उनके घर कुछ मेहमान आ गये थे और मां उसे लेकर रात बिताने के लिए यहां चली आयी थी, अपनी चाची के घर. चाची ने फोन पर पूछा था कि तुम्हारे घर मेहमान आ गये हैं- तो क्या इस बात की ख़बर तुम्हारे पड़ोसियों को भी है ?

मां ने कहा - ख़बर तो है, पर वे कोई दखल नही देंगे. ...पर मैं टोनी को लेकर आ रही हूं...मुझे डर लगता है.

वह यूनिट में पहुंच कर उदास हो गया. रात भर की थकान और जगार उसकी उदासी का कारण न थी. उसकी तो आदत पड़ गयी है. युद्ध विराम के कारण इन दिनों वैसे भी थोड़ी राहत है...वह तो उस बच्चे के कारण उदास हो गया, जिसका बढ़ा हुआ हाथ वह संकोचवश थाम नहीं सका.

❐

अपनी किस्मत ही कुछ ऐसी है...उसने दांत भींच कर अपने सिर को झटका दिया और उठ बैठा. एक गुज़रा हुआ जमाना इन दिनों उसके ज़हन पर सवार है. छुट्टी काट कर आये आठ दिन से ज्यादा हो गये पर वे दृश्य और ध्वनियां अब भी सपनों-सी तैर रही हैं. शुरू-शुरू के दो-तीन दिनों तक तो जो उसने ट्रेन में गुज़ारे थे, वो समूची घटना ही साकार होती रही थी. आंख मूंद कर लेट रहता तो शफीक़ आ खड़ा होता...और आंख खोल कर बैठ जाता तो भागते दृश्य बोल उठते...वह बार-बार सिगरेट पीता पर किसी करवट चैन न पड़ता. दोपहर और रात को एक-एक पैग रम लेकर सोने की कोशिश की पर हर बार उचटती-सी नींद आयी. उसका सिर फटा जा रहा था. वह समझ नहीं पा रहा था कि आख़िर शफीक़ ने उसे इस कदर आहत करने की ठान क्यों रखी थी.

उसके ज़हन में शफीक़ बार-बार आठवीं से उभरता है. पापा जब छुट्टी पर आये और उसे गांव के स्कूल से निकाल कर कस्बे के स्कूल में भरती करा गये, उसकी पढ़ाई की ख़ातिर मां को भी वहीं किराये का घर लेकर रहना पड़ा; तब पहले ही दिन जिस सफेद कुर्ते-पायजामे वाले सांवले किशोर ने उसका ध्यान अपनी तरफ खींच लिया था, वह शफीक़ था. उसे क्लास के लड़के हीरो कहा करते. गो कि उसके बालों में अतिशय तेल चमकता और वे माथे को तिरछा काटते हुए दायीं आंख को घेरे रहते. शफीक़ गर्दन झटक कर बार-बार हटाता और वे हठीली मक्खी की तरह थोड़ी देर में फिर वहीं आ बैठते.

ए. असफल

-अरे ! ये तेरा हेयर स्टाइल ही ग़लत है, यार ! उसने प्रवेश किया. शफीक़ चौंक गया. घूरता रहा बस.

उसके बाद दोनों में पटने लगी.

शनिवार को शफीक़ यूनिफार्म में होता था. खाकी निकर और सफेद कमीज. हाफ टाइम में छुट्टी बुल जाती. लड़के फील्ड में वॉलीबाल खेलते. शफीक़ बहुत उम्दा खेलता था. उसका खेल देख देखकर ही आलोक के भीतर खेल के प्रति थोड़ी-बहुत ललक पैदा हुई. और वह भी भाग लेने लगा. क्योंकि छुट्टी के बाद रोजाना पी. टी. वाले सर नये लड़कों को वॉलीबॉल सिखाते थे.

❐

नींद से बोझिल पलकें लिये वह खा-पी कर सो गया. सोने से पहले उसके पास वही बच्चा आकर खड़ा हो गया जो सुबह-सबेरे की पहली किरण के साथ बनियान सूट में देहरी पर खड़ा मिला था. उसके गोरे-गोरे हाथ-पांव और गुलाबी आभा वाला मुख उसके दिमाग पर छाने लगा और वह गहरी सांसें ले उठा. फिर वह कब सो गया उसे खुद नहीं पता चला.

शफीक़ से उसकी दोस्ती इंटर तक आते-आते मुहब्बत में बदल गयी थी. वे सुबह से शाम तक साथ-साथ रहते. यहां तक कि गयी रात तक एक-दूसरे के घर रह कर पढ़ते या टीवी देखते. गेम खेलते. वॉलीबॉल की जिला स्तरीय से लेकर राज्य स्तरीय प्रतिस्पर्धा तक वे एक ही टीम में रहे...तब उन यात्राओं में, कैंपों में और फील्डों में वे ये कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि ये

साथ एक दिन अचानक छूट जायेगा...

न जाने कैसा भयानक सपना देखा. वह हड़बाकर उठ बैठा. नन्हें बालक की तरह विचलित-सा इधर-उधर देखता रहा, फिर भीतर ही भीतर रोने लगा.

साथी जवानों और अफसरों को यह भान भी न था कि उसकी मनोदशा बिगड़ रही है. वह सारा काम मशीनी ढंग से कर रहा था. पर उसके भीतर लगातार वही रील घूम रही थी. ...उसकी भरती के बाद शफीक़ की दोस्ती डेविस से हो गयी थी. ट्रेनिंग के बीच में जब पहली छुट्टी पर आया तो लिफाफे में ढेर सारे फोटोग्राफ्स लेकर आया था. घर आकर उसने सामान फेंका. नहाया-धोया और जल्दी से मां के हाथ का बनाया नाश्ता उड़ाकर एक लिफाफा साइकिल के कैरियर में दबाकर शफीक़ के घर की ओर उड़ने लगा.

उस वक़्त वो कोई फौजी न था. महज़ एक छात्र था जो ट्रेकसूट में साइकिल सरसराता हुआ शफीक़ के यहां दौड़ पड़ा था. ...और शफीक घर पर नहीं मिला. अम्मी ने कहा - वो तो डेविस के यहां पढ़ने लगा है. तो वह लोकेशन जानकर डेविस के घर पर ही जा धमका. वहां गेट पर एक हमउम्र लड़की मिली, जिसकी ओर कोई ध्यान न देकर हड़बड़ी में पूछा उसने, 'यही डेविस का घर है ? यहां शफीक़ आया है - क्या ?'

लड़की ने अपने चपल नेत्रों से उसे नीचे से ऊपर तक देखा और बग़ैर कुछ पूछे जीने का रास्ता दिखा दिया. वह एक ही सांस में सारी सीढ़ियां चढ़कर डेविस के कमरे में जा पहुंचा. वहां शरीक उसे देखकर चहका और वो बवंडर की तरह उससे लिपट गया. डेविस समझ गया कि यह आलोक है. जिसकी बातें शफीक़ अक्सर किया करता है. ...वह बी. एस-सी. सेकंड ईयर में था, और शफीक भी. इंटर के बाद आलोक फौज में चला गया था.

बाद में शफीक़ ने उसे डेविस से मिलवाया और फिर वे मिलकर आलोक के लिफाफे के फोटोग्राफ्स देख उठे, जो उसके ट्रेनिंग पीरिएड के थे. थोड़ी देर में वहां वही लड़की चाय और बिस्किट लेकर आ गयी. डेविस ने कहा, 'ये मेरी कज़िन है, सोफिया !'

आलोक ने गौर से देखा, लड़की उसे अपने भीतर उतरती-सी लगी.

'क्या कर रही हैं...' वह हकलाया.

'जी-पोलिटेक्निक'... उसकी जैसे सांस फंस गयी. वाक्य डेविस ने पूरा किया, 'महिला पॉलीटेक्निक में एडमीशन हो गया है इसका.' कुछ देर के लिए कमरे में चुप्पी छा गयी. वे चुपचाप चाय 'सिप' करने लगे. तभी चहक कर शफीक़ ने कहा, 'सोफिया! ये मेरा ज़िगरी आलोक है.'

'ओह आलोक!' सोफिया उत्साह में बोली. उसकी दंत-पंक्ति की द्युति को आलोक के ज़हन ने क्लिक कर लिया.

२६ दिसबर १९५५

एम. ए. (हिंदी)

प्रकाशन : 'जंग' (कहानी संग्रह), 'बारह बरस का विजेता' (बाल उपन्यास) एवं ९ अन्य बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित. 'वामा', 'संस्कार गाथा' (कथा संग्रह) प्रकाशनाधीन.

पुरस्कार : ६ विभिन्न कथाप्रतियोगिताओं में कहानियां पुरस्कृत. 'बारह बरस का विजेता' पर राष्ट्रीय पुरस्कार.

संप्रति : म. प्र. राजस्व विभाग से संबद्ध.

'ऑफकोर्स ! डोडा से लौटा है मेरा यार, फौजी ट्रेनिंग लेकर!' शफीक़ ने समझाया.

ट्रेनिंग अभी शेष है कहना चाहा उसने पर तब तक सोफिया चली गयी. फिर वे लोग औपचारिक-सी बातचीत पर उतर आये-

- खुला छोड़ दो तो पानी जम जाता है.
- पेड़ बर्फ से ढंक जाते हैं.
- अलस्सुबह बर्फ से ढंकी पहाड़ी चोटियां सोने सी चमकती हैं.

'लेकिन, वादी में मौत नाच रही है !' शफीक़ ने पटाक्षेप कर दिया.

❒

आलोक अमर शहीद हवलदार यशवीरसिंह का बेटा ! जिसने बचपन से ही पिता को फौजी वर्दी में देखा. वे अक्सर बतलाते, कि - सेना में सिपाही की भर्ती मुख्य है. सिपाही को रिक्रूट भी कहते हैं. जब तक वह ट्रेनिंग पर नहीं जाता रिक्रूट कहलाता है. सिपाही से भर्ती होकर तुम अपनी क्षमता और योग्यता के बल पर सैन्यसेवा करते हुए सूबेदार, मेजर के पद-तक पदोन्नति पा सकते हो !'

आलोक अक्षर मिला-मिला कर पढ़ना सीख रहा था. गांव-देहात की ज़िंदगी. दादी के पूजा के आले में रामायण-गुटका के अलावा एक पुराने पन्नों की किताब रखी रहती थी. ...वह उसे कहीं से भी खोल लेता और पूरे कौशल से उसके अक्षर मिला-मिला कर पढ़ता-

'देखो भाइयों गवरमेन्ट सरकार ने हमारी कौम की तीन फौजें खोल रखी हैं. एक आगरा में, दूसरी मथुरा में, तीसरी जबलपुर में, हमारे ही ऑफीसर हैं. हम सब भाई मिल कर भर्ती करने की कोशिश करें. अगर मरने से डरते हों तो मर तो घर पर भी जाते हैं. इसलिए दूसरों के उपकार में मरना अच्छा है. सरकार को इस समय मदद दी जावे. आल्हा में भी कहा है. वर्ष अठरहा लों क्षत्रिय जीवे, आगे जीवन को धिक्कार. खाट पे पड़के क्षत्रिय मरता है वो नरक को जाता है. महाभारत में लिखा है रण में मरे मुक्ति पद पावे, जीत होय तो शूर कहावे...'

आलोक समझता नहीं था और न रोमांचित होता था इस उद्‌बोधन से. वो तो जैसे खेल-खेल में बड़ी माता की मठिया पर चढ़ जाता या बैजनाथ मंदिर में छुपा-छुपल्ली खेलता रहता दिन भर. वैसे ही इस किताब के अक्षर मिला-मिला कर पढ़ने का जौहर दिखलाता रहता था मां को और दादी अम्मा को.

घर में अक्सर वह पिता का अलबम लेकर बैठ जाता और फोटो निकाल-निकाल कर प्रदर्शनी सजाता रहता. कहता - देखो दादी अम्मा, जे हम और पापा. पापा अपनी फौजी ड्रेस में हेंगे! और जे पापा अपने फौजी भैयन के संग जंगल में खड़े हैं - जे खेल-कूद रहे हैं फौजी भैयन के साथ ! और जे कसरत कर रहे हेंगे. ...और जे भी पापा हैं ! और जे भी - देखो ! बंदूक ताने पहाड़ की तरफ देख रहे हैं. ...और जे वाले पापा जंगल में खाना खाइ रहे हैं. और जे बंदूक साफ कर रहे हैं. और जे पहाड़ियन में गिर पड़े -धचाक् से, सीख रहे हैं- अम्मा लड़ाई ! जे पापा !

'जे लोग सब काम जंगल में ही करत रहत हैं ? हैं - बड़ी अम्मा !'

दिन भर चबड़-चबड़. दिन भर. मां और दादी अम्मा ऊबती नहीं. एक को पति और दूसरे को बेटे की बातों में बड़ा रस मिलता. और उसे भी पिता की दुनिया में खोकर अनिर्वचनीय सुख मिलता, जैसे ! वह पिता को प्रदत्त स्मृति चिन्हों की दुकान सजाता और पूछता साक्षर मां और अनपढ़ दादी अम्मा से कि इन प्रतीकों के अर्थ क्या हैं ? ये जो कांच का घर बना है और छत पर दो उल्टी राइफलें रखी हैं, जिन पर सैनिकों की टोपियां ? इसका मतलब क्या है. और ये जो सुनहरी छतरी वाला खुले दरवाज़ों का खिलौना-सा है, कहां का मंदिर है ? ये कौन से किले की मीनारें और तोपें हैं ?...ये नक्शा, पहाड़ियां, बादल और पशु-पक्षी कहां के हैं, अम्मा ! ...इन फोटुओं में छपे पेड़ और झरने, नदियां किस देश की हैं...

पिता कबड्डी, खो-खो और कुश्ती के खेल में रुचि रखते थे. वे बहुत ताकतवर और फुर्तीले थे. उनकी बहादुरी के किस्से सुन-सुनकर मां गर्व से फूल जाती थीं. अपनी सैन्यसेवा में अथक परिश्रम से उन्होंने कई पदोन्नतियां लीं और कई कोर्स किये. साथी और अफसर उन्हें सुपर कमांडो कहते. वे अपने प्राण सदैव न्यौछावर करने को तत्पर रहते.

❐

वह जब डोडा में प्रशिक्षण के लिए पहुंचा तो उसने पाया कि कश्मीर हिमालय के आंगन के रूप में विख्यात समुद्र तट से तकरीबन ५००० फीट की ऊंचाई पर बर्फ से ढंके पर्वतों की गोलाबंदी में वह खूबसूरत घाटी है जिसे धरती का स्वर्ग कहा जा सकता है. और कश्मीरियत एक ऐसा सीधा शब्द है जो इस घाटी की पहचान का प्रमाण है. किंतु एक औसत कश्मीरी मुसलमान क्षेत्रीय अस्मिता और मुस्लिम अस्मिता दोनों को एक साथ जीने की वज़ह से द्वंद्व में है...कि जब वह पांच हजार साल की कश्मीरियत की बात करने लगता है तो उसकी मात्र छह सौ वर्ष पुरानी पहचान आड़े आती है और जब सिर्फ मुस्लिम पहचान की बात सोचता है तो क्षेत्रीय पहचान से हाथ धो बैठता है. कश्मीरी-हिंदू भी कश्मीरी मुसलमान की पहचान के संकट का शिकार है.

'एक ज़ख्म जिसे नासूर बना दिया गया' यह बात उसे ब्रिगेडियर प्रकाश चौधरी ने बतायी. ...वे पिता को भी एक स्पेशल फौजी ट्रेनिंग दे चुके थे. मुख्य घाटी में बोली जाने वाली कश्मीरी भाषा घाटी के अलावा किस्तवर, डोडा और जम्मू के अन्य हिस्सों में बोली जाती है. ब्रिगेडियर बड़े अनुभवी और ज़हीन थे. वे कश्मीरी साफ लहज़े में भी बोल लेते और अंग्रेजी भी. उन्हें इतिहास-भूगोल, हथियार, लड़ाई, शांतिकाल में समन्वय और राजनीति.तथा विदेश नीति और सामरिक तैयारी का अच्छा ज्ञान था. आलोक को उन्होंने बताया कि जम्मू-कश्मीर के महाराजा हरीसिंह एक स्वतंत्र राज्य के अधिपति बनना चाहते थे. वे जनता को लोकतांत्रिक अधिकार भी नहीं देना चाहते थे और पंथनिरपेक्ष राष्ट्र में आस्था रखने वाली नेशनल कॉन्फ्रेंस उनके दमन की शिकार थी. पाकिस्तान ने इन दोनों बातों का लाभ उठना चाहा और उसके सशस्त्र हमलावर बढ़ते-बढ़ते श्रीनगर के बिजलीघर और विमानतल के पास पहुंच गये. रियासत की थोड़ी-सी सेना उनको कैसे रोक पाती और भारत की सेना रियासत में उसके विलय के बिना कैसे जाती ? इन हालातों में आज कश्मीर न भारत का रहा न पाक का बल्कि एक आग का गोला बन गया है जो यहां के शून्य से नीचे के पांच डिग्री सेल्सियस तापमान पर भी नहीं बुझ रहा. विखंडित कश्मीर पाक, चीन और भारत की फौज के बूटों तले कराह रहा है, मेरे बच्चे !"

वह एक बार फिर स्तंभित रह गया. ब्रिगेडियर का स्वर भीग गया था. वे थोड़े से नशे के बाद सच्चाई पर उतर आते थे...

❐

शाम हुई तो उसने फिर अपनी वर्दी पहन कर हथियार उठा लिये. उसके ज़हन में वही उषाकाल का बालक सिर उठाने लगा.

कितनी मासूमियत से आंख मीड़ते हुए अपना नन्हा हाथ उसकी तरफ बढ़ाया था जिसने ! पर भीतर के दरवाज़े से पर्दा उठाकर झांकती मां को देखते ही उसका हाथ कठिया गया और नीचे गिर पड़ा. फिर दूसरे हाथ से उसने देहरी के पार पड़ी बच्चे की चप्पल उठाकर भीतर फेंक दी...और थका-थका सा लौट आया. काश ! बिन लादेन (लादेन के पुत्र) की नकल में इस बच्चे की दाढ़ी न उगे, न ये जेहाद की भाषा सीखे और छापामार लड़ाई! तो ये धरती का स्वर्ग सचमुच देवताओं की बस्ती बन जाय. वो बच्चा किसी देवदूत से कम है क्या ! जो उसकी आंख में इस कदर छा के रह गया है... वह भावुक होने लगा. वह गलियों में प्रवेश करने लगा. गश्तीदल के बूटों की ठक-ठक और बतकही और पोजीशन ले के चलने से लापरवाह वह बच्चे के ख्यालों में डूबा आगे बढ़ता रहा.

तभी अचानक एक घर के पिछवाड़े की जाली से आती आवाज़ ने उसे चौंका दिया. कोई फोन पर बोल रहा था कि 'उसने बाज़ार में एक आदमी के पास आम देखा है.' वह चौकन्ना हो गया, यानी बम देखा है...तो ! ये लोग रात में विस्फोट करेंगे...वही स्वर आगे बोला, 'तुम्हारे घर में यदि कोई मेहमान नहीं हो तो वह आज की रात वहां बिताना चाहेगा...' आलोक समझ गया कि स्वर सांकेतिक भाषा में कह रहा है कि उसके घर में यदि कोई आतंकवादी नहीं छिपा हो तो वह उसके घर सोने चला आयेगा...अर्थात् - इस इलाके में आज ख़तरा है. और स्वर आगे कह रहा था, 'हां, पड़ोसियों को इसकी ख़बर है !' यानी सुरक्षाकर्मियों को पता है...और मुठभेड़ होगी. वह दंग रह गया. उसे कहां है ख़बर ? इनका खुफियायंत्र कितना सशक्त है. उसने तुरंत यूनिट को मैसेज दे दिया. फौरन सहायता आ पहुंची. मोर्चे बंदी हो गयी. अखरोट और चिनार की कतारें इमारतों को उसांस भरकर देखने लगीं.

❐

सुबह अकस्मात उसने पाया कि उसी दर पे आकर ठहर गया है. यूनिट में लौटने का समय हो रहा था. बच्चा नहीं दिख रहा. कोई परदे से झांका, तो उसने पूछ लिया, जैसे शफीक़ को पूछता था, 'वो कहां है - टोनी !'

'टोनी !' स्वर भयभीत हुआ, 'टोनी नहीं है - वे लोग तो, मेहमान थे'...

वह हताश-सा फिर यूनिट में लौट आया. सब तरफ रात की बहादुरी के किस्से फैले थे. वह रिपोर्ट देकर और निबट कर सो गया. स्वप्न में शफीक़ और वो नन्हा बुद्ध दोनों आकर बैठ गये.

'शफीक़ माने क्या होता है?' बरसों पहले पूछा गया प्रश्न उसने फिर पूछा.

'पवित्र!' वह पहले की तरह निस्पृह-सा बोला. फिर भावावेश में कहने लगा, 'और...आलोक माने प्रकाश ! पवित्रता और प्रकाश का तो चोली-दामन का साथ है, आलोक !' शफीक़ भावुक था, 'इन्हें कोई जुदा नहीं कर सकता. संसार में इन दोनों के बिना अंधकार और गुनाह के सिवा और कुछ नहीं बचता.'

शफीक़ बुद्धिमान था और विलक्षण भी. प्यार उनका हरी बेलि की तरह बढ़ रहा था. वह सेना में चला आया तो शफीक़ और भी नज़दीक हो गया. और, और भी ज़रूरी हो गया डेविस की कज़िन सोफिया के कारण. सोफिया की मस्त आंखों को वो पहली ही नज़र में अपना दिल दे बैठा था. यह तो प्लस पाइंट था उसके तईं जो शफीक़ डेविस के यहां पढ़ने जाता. इस बहाने वह भी वहीं जा धमकता...और सोफिया भी किसी न किसी बहाने ऊपर आ जाती. उसे फौज और फौजियों को लेकर बड़ी जिज्ञासा थी. आलोक एक-एक बात विस्तार से बताता. धीरे-धीरे नजदीकियां अपना रंग दिखाने लगीं. वे लोग डेविस के कमरे के अलावा कस्बे के एकमात्र पार्क, नज़दीकी शहर के सिनेमा-घरों और चाय-घरों में भी मिलने लगे...

'तुम्हारे चेहरे पर ये काली भरी हुई मूंछ मुझे बहुत अच्छी लगती है,' सोफिया चिड़िया की तरह चहक कर कहती. तो आलोक स्निग्ध आंखों से निर्निमेष ताकता रहता. फिर धीरे से बोलता, 'वापस लौटकर मैं तुम्हारी मस्त आंखें और मोती से चमकते दांत कभी भुला नहीं पाऊंगा सोफिया.'

'तुम सेंटिमेंटल भी हो. फौजी ऐसे भी होते हैं - क्या ?'

वह चुप.

उसे क्या बताता कि फौजियों के पास दिमाग से ज्यादा दिल होता है. यानी भावना होती है. तभी वे हंसते-हंसते अपनी जान लुटा बैठते हैं.

...और एक बार तो वो मां और शफीक़ को बताये बगैर ही चोरी से ब्रिगेडियर से दो दिन की छुट्टी मांग कर चला आया था सोफिया से मिलने. शहर के लॉज में ही ठहर गया था आलोक. वह कॉलेज आती थी... और वह छुट्टी से पहले ही गेट पर आ खड़ा होता. ...वह जैसे भीतर बस गयी थी. उसे छोड़ कर जा पाना कितना कठिन हो गया था उसके लिए ? ...वह फोन पर अपने अफसर से गिड़गिड़ाया, कि मां बीमार है...दो-चार दिन की मोहलत और दे दीजिए सर.' पर उन्हीं दिनों दक्षिण में ईसाई पादरी पर हुए हमले ने डेविस को हिंदुओं के विरुद्ध कर दिया. सोफिया उखड़ी-उखड़ी सी रहने लगी. उसने शफीक़ को बीच में डालना चाहा तो उसने भी बेरुखी बरती... आलोक का दिल फट गया. वह डोडा लौट आया. एक दिन मौका पाकर उसने ब्रिगेडियर से अपने दिल की बात कह दी... उस दिन वे चुप रह गये. पर तीन-चार दिन बाद एक रात को उसे अपने पास बुलाकर लकड़ी के गट्ठों से तापते हुए बोले, 'यार ! फौजी का इश्क तो कंट्री से होता

है, यार ! फौजी की इज्जत उसकी रेजीमेंट होती है... और तुम जिस लड़की की बात करते हो, जो अब सोफिया है, और शफीक़. ये सब इसलिए नफ़रत करेंगे तुमसे कि ये लोग हिंदुओं से कन्वर्टेड हैं. अगर ये ओरिजनल मोहम्डन और ईसाई होते तो यह नौबत नहीं आती. जो असली मुस्लिम और ईसाई आये, उनसे हमारे रिश्ते आत्मीय रहे.'

उसने अपने अफसर से कोई ज़िरह नहीं की. वह आहत हुआ कि वे शफीक़ और सोफिया को भुलाने की बात कह रहे थे. उसने उनसे अकेले में मिलना-जुलना बंद कर दिया. वह हर संडे को शफीक़ को फोन करता था और सोफिया को भी. मां का हाल-चाल पूछता और आग्रह करता कि उनसे मिलते-जुलते रहा करें वे लोग. पर अगले फोन पर शफीक़ अपनी व्यस्तता का बहाना कर देता, 'सॉरी यार ! इस हफ़्ते तो नहीं जा पाया, अब ज़रूर देख आऊंगा. वैसे तो वे महफूज़ हैं, हिंदुओं की बस्ती में हैं. और तेरी ट्रेनिंग क्या हनुमान की पूंछ हो गयी है...?'

वह समझ नहीं पाया कि शफीक़ उसके लिए हींड़ रहा है या पीछा छुड़ाने के लिए बहाना खोज रहा है ? हनुमान की पूंछ कोई भद्दा मज़ाक नहीं है, पर शफीक़ ने कहा तो चुभ गयी बात. आगे से उसने शफीक़ को फोन करना छोड़ दिया. हालांकि सोफिया भी मां के पास नहीं जाती थी. कभी पढ़ाई की व्यस्तता और कभी कुछ वह भी कह देती. पर आलोक अपने दिल को नहीं रोक सका और उसे फोन करता रहा.

मां को वह चिट्ठी लिखता था. और शफीक़ को भी लिखना चाहता था. अव्वल तो उसे अपने प्रेम का राज़दार बनाना चाह रहा था, पर जाने क्यों अब शफीक़ पर से उसका विश्वास उठता चला जा रहा था.

नींद पूरी नहीं हुई. आलोक उठकर बैठ गया. वह शफीक़ से अपने संबंधों की पड़ताल करने लगा. ... कि कब, आख़िर कब से उसके और मेरे बीच खाई बनना शुरू हुई ? वह उस नामालूम शुरुआत पर पहुंचना चाहता था, पर तस्वीर धुंधली रह जाती. ...पिता की शहादत ने या मेरी भर्ती ने, किस बात ने शुरुआत की ? और क्या इन्हीं बातों ने संबंधों में दरार पैदा की ! ऐसी बातें तो बहुत पहले से चली आ रही हैं...बाबरी मस्जिद के ध्वंस ने उसे आहत किया होता तो वह मुझसे जुड़ता ही नहीं. लेकिन बाबरी का ध्वंस उसकी नाबालिग उम्र का इतिहास है. उसकी स्मृति में तो कारगिल युद्ध कौंधता होगा. इसी से उसकी भावना को चोट लगी हो शायद. शायद वह कश्मीरियों के पक्ष में हो. शायद वह पाकिस्तानियों के पक्ष में हो जिनसे हमने बंगलादेश कटवा दिया. ...और हो सकता है बाबरी का ध्वंस उसे साल गया हो, लेकिन वह घाव कारगिल युद्ध ने हरा कर दिया हो या फिर मेरी भर्ती ने. ओसामा की हार ने. गुजरात के दंगों ने !

वह कयास लगाते-लगाते हैरान हो गया. वह जब ट्रेनिंग पर गया और उसने जाना कि नियंत्रण रेखा आखिर है क्या ? वह पाक अधिकृत कश्मीर और भारतीय कश्मीर के बीच की विभाजक रेखा जो जम्मू के बाद राजौरी, पुंछ, उड़ी, केरम, कुपवाड़ा, द्रास, करगिल, बटालिक, सियाचीन क्षेत्र और कराकोरम दर्रे के इस पार चीन अधिकृत कश्मीर से मिलती पूर्व से पश्चिम की ओर खींची गयी विभाजक रेखा है जिसमें सियाचीन क्षेत्र स्पष्ट रूप से विभाजित नहीं था.

करगिल की मश्कोह-घाटी, द्रास, काक्सर, और बटालिक सब सेक्टरों में कई पहाड़ों की गगनचुंबी चोटियां हैं जो कि सदैव हिमाच्छादित रहती हैं. सो इस निर्जन और दुर्गम इलाके पर अब तक किसी देश ने अपना अधिकार नहीं जताया था. पर जनवरी के बाद इस क्षेत्र को लेकर पाक की नीयत बिगड़ी और उसने उग्रवादी संगठनों के सहयोग से इस इलाके को धीरे-धीरे कब्जियाना शुरू कर दिया. और जब ये पाक घुसपैठिये भारतीय सीमा में अधिक अंदर तक घुस आये और भारतीय पहाड़ी नागरिकों को वहां से खदेड़ने लगे... उन्होंने ऊंची-ऊंची नुकीली पहाड़ियों पर किलेनुमा बंकर बनाकर पाकसीमा तक हथियारों की आवाजाही एवं रसद सामग्री के लिए सुगम रास्ते तैयार कर लिये तब हमारे कान खड़े हुए. इससे भारतीय सीमा में अति सामरिक महत्व के ५१० कि. मी. लंबे श्रीनगर-लेह राजमार्ग के अवरुद्ध होने का ख़तरा बढ़ गया. पिता उसी करगिल युद्ध में द्रास सब-सेक्टर की १६ हजार फीट ऊंची तोलोलिंग चोटी की खड़ी, चिकनी और ढलवां चट्टानों पर अपनी जान हथेली पर लेकर एक-एक इंच रेंगते हुए चढ़े. कि जिस चढ़ाई को घुसपैठियों की गोलाबारी ने बेहद जोखिम भरा बना दिया था. उस आत्मघाती मिशन में पिता कामयाब रहे. उनकी शहादत पर उसे गर्व है. ...शफीक़ ! मेरे दोस्त तुम आत्महंता न बनो...पिता ने तो बच्चे-बच्चे के लिए कुर्बानी दी. इस धरती के जर्रे-जर्रे के लिए कुर्बानी दी. तुम बिन लादेन और मुल्ला उमर के हिमायती क्यों हो ? ...वे संसार को उस आदिम अवस्था की ओर ले जाना चाहते हैं जिसमें चाकू की तरह नाखूनों के इस्तेमाल से मनुष्य-मनुष्य को फाड़कर उसका रक्त पी जाता. क्या पीछे की ओर, उस बर्बरता की ओर लौटना धार्मिक होना है ? तुम्हें वो रक्त-पिपासु इतिहास स्वर्णिम क्यों लगता है, कि जिसमें औरतें जानवरों की तरह इस्तेमाल की जाती थीं और सर्वत्र पशुबल की जय-जयकार थी.

□

ट्रेनिंग के बाद उसे दो महीने की छुट्टी मिल गयी थी और आलोक अपने घर चला आया था. तब उसे ख़बर नहीं थी कि शफीक़ उससे इतनी दूर जा चुका है. ...कि उसका लौटना नामुमकिन है. वह उमंग में भरा उसके घर जा पहुंचा. अम्मी ने दरवाज़ा खोला तो वो पांव छूकर उनसे लिपट गया. मां का दिल

फिर भी मां का ही दिल होता है. उन्होंने उसे बैठक में बिठा दिया और जलपान ले आयीं. उसे शफीक़ से मिलने की पड़ी थी. लेकिन अम्मी ने कहा कि रात में पढ़ता रहा था, आ रहा है फ्रेश होकर ! तुम बैठो तो सही...

उसका दिल धड़क रहा था. आज वो गले से लगकर सारे गिले-शिकवे दूर कर लेगा. और सोफिया और अपनी मुहब्बत के बारे में भी सब कुछ बता देगा. एक शफ़ीक़ ही है जो उसकी भावना समझ सकता है. इस मुआमले में भारी मदद कर सकता है. वह बैठा रहा और चाय पीने के बाद कभी बिस्किट कुतरता रहा तो कभी नमकीन दाने टूंगता रहा. और उसके ज़हन में नाचता रहा शफीक़ का सांवला सलौना क्लीन शेव्ड चेहरा, जो आज अरसे बाद साक्षात दिखेगा ! लेकिन कोई पौन घंटे बाद शफीक़ हकीकत में सामने आया तो वह उसे देखकर स्तंभित रह गया. उसके सिर पर टोपी, चेहरे पर दाढ़ी और बदन पर पठानी सूट था. ...उसने सोचा भी नहीं था कि वह इतनी जल्दी इस कदर बदल जायेगा. अपनी जाती पहचान के लिए इतना कटिबद्ध हो जायेगा. ...आलोक उससे लिपट नहीं सका. हाथ मिलाकर रह गया.

उस क्षण उसे लग रहा था कि शफीक़ कोई अजनबी शख़्स है और रेल के कंपार्टमेंट में अचानक मिल गया है. जिससे कोई पूर्व पहचान नहीं है उसकी. ...फिर भी उसने पूछा, 'क्या हाल-चाल हैं ? कोई जॉब कर लिया है, क्या ? अम्मी बता रही थीं कि रात में देर से सोये...'

'हां !' उसने जमुहाई ली, बोला, 'एक संगठन ले बैठा हूं.'

'कौनसा ? किसका संगठन?' वह चौंक पड़ा.

'उसी का, जिसका नेटवर्क विश्वव्यापी है.' उसके चेहरे पर दर्प था. 'अर्थात!' आलोक का मुंह खुला रह गया. शफीक़ ने बात पलट दी, 'सोफिया से मिले ?'

उसके भीतर के सितार को यूं अचानक छेड़ देगा शफीक़ इसकी उसे ख़बर न थी. अकबका गया वह, 'हां ! नहीं...अभी कहां!'

'मिलना मत' उसने होंठ जोड़ लिये.

'क्यों?' उसकी सांस रुक गयी.

'वे लोग बहुत गुस्से में हैं. दरअसल, तुम हिंदुओं ने यहां हम अल्पसंख्यकों का जीना हराम कर दिया है...'

शफीक़! तुम यह क्या कह रहे हो - यार! उसके भीतर मौन गुहार उठा. पर शफीक़ तक उसकी अभिव्यक्ति पहुंची नहीं. तार कट गये थे, शायद. एक जमाने में जब वह आने को होता उसके घर तो शफीक़ पहले से गेट खोल कर बैठ जाता. कहता, मेरे ज़हन में घंटी बजने लगी थी कि तुम आने वाले हो !

'तो क्या हम सब अब एक-दूसरे के दुश्मन हो गये?' उसके भीतर कोई चीखा.

'ज़ज्बात से काम न लो,' शफीक़ ने समझाया, 'ये सियासी मसले हैं भाई ! आज सारी दुनिया में कौमों की सियासत है. हम उससे बच नहीं सकते. और हम ज़िंदा नहीं रहेंगे जो अपने खोल के भीतर न छुपे.'

उसे सदमा लगा.

उसे सदमा इस बात का ज्यादा लगा कि सोफिया नहीं रही. सोफिया उसके लिए नहीं रही. आलोक रोने लगा. शफीक़ समझ नहीं पाया. समझाता हुआ बोला, 'यह कैसे संभव हुआ कि अलोकतांत्रिक, सांप्रदायिक और गैर धर्मनिरपेक्ष दल सत्ता में आ गये?'

'क्योंकि...' आलोक ने गला साफ़ किया, 'सिस्टम खराब है.'

'नहीं ऽ!' शफीक़ चीख-सा पड़ा, 'सांप्रदायिकता व्यवस्थित रूप से पनपी है. सांप्रदायिकता को महिमामंडित करके और सेक्युलरिज़्म का मज़ाक बनाकर वे सत्ता में आये. ...और इससे भी पहले अपने इतिहास को स्वर्ण और दूसरे के इतिहास को काला, बर्बर और आततायी बताकर सारी जेनरेशन के मन में घृणा बो कर तुम्हारी सेक्युलर पार्टियों ने उनके सत्ता में आने का रास्ता खोला. क्या तुम हिंदुओं ने कभी ये जानने की कोशिश की कि महमूद गजनबी और औरंगजेब ने मस्जिदें भी गिरायी थीं और ये अभियान दौलत के लिए थे ! यह मज़हबी मसला नहीं था. कश्मीर के राजा ने मंदिर तोड़े धन की खातिर. मूर्तियों पर थूका ताकि आस्था मिट जाये, जन-विद्रोह न उमड़े.'

वह अवाक था. शफीक़ ट्रेंड हो चुका है. अब दिल की बात कहना बेकार है. अब तो इसकी हर चाल में सियासत रहेगी. ...वह उठकर चला आया.

पर शफीक़ उसके ख्यालों में जस का तस खड़ा था.

शफीक़ से तनाज़ा और सोफिया से दूरी उसे असहनीय हो रही थी. खाने-पीने-सोने में मन न लगता. ज्यादातर टी.वी. के सामने बैठता. आते ही डिस्क कनेक्शन ले लिया था उसने. मां के लिए तो दूरदर्शन ही पर्याप्त था. लेकिन वह चैनल बदल-बदल कर भी अब कुछ देख-सुन नहीं पाता. ...उसके दिमाग के पर्दे पर के दृश्य और ध्वनियां टी.वी. के पर्दे पर के दृश्य और उससे उभरती ध्वनियों से ज्यादा शक्तिशाली होते.

मां पूछतीं, तुझे क्या गम सता रहा है ? वह हंस के टाल जाता. कमरे में पिता की तस्वीरें, उनके मेडल और प्रमाण-पत्र उनकी स्मृति को जीवंत बनाये रखते. उसे निरंतर एक ही दृश्य दिखता कि पिता इंच-इंच कितनी कठिनाई से उस दुर्गम पहाड़ पर चढ़ रहे हैं और करीब की पहाड़ियों पर छुपे-बैठे घुसपैठिये भयंकर गोलाबारी कर रहे हैं...उनके कलेजे का खून बह रहा है और शफीक़ कहता है कि तुम हिंदुओं ने हमारे इतिहास को तोड़-मरोड़ के पेश किया और नफ़रत बोयी ?

सवाल इतिहास के कोढ़ों का नहीं है - सवाल वर्तमान का

है. कश्मीर का इतिहास और वर्तमान हमें सांप्रदायिक बना रहा है. विभाजन की त्रासदी झेलने वाली पीढ़ी और उसकी संतति भी सांप्रदायिक होने से नहीं बच सकती. वह कहना चाहता है कि यह क्रूर मज़ाक हमें देश की परिस्थितियों ने दिया है.

फिर सारे ख्यालों को वह झटक देता. और साइकिल उठाकर सड़कों पर निकल जाता कि शायद कहीं सोफिया दिख जाय ! उसके घर जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी आलोक को. पहले जब वो फोन किया करता था तो दिन और समय तय होता था. सोफिया फोन के पास बैठती. और ज्यादातर काल्स वही अटैंड करती. इस तरह उससे उसकी निर्बाध बातचीत हो जाती थी. ...और आज इतनी पास होकर भी कोसों दूर हो गयी है. उसे पक्का यकीन है कि शफीक़ ने डेविस को भड़का दिया है. ...सोफिया पर प्रतिबंध लग गया है. कहां वह सोचता था कि शफीक़ की मदद से सोफिया को पा लेगा. और कहां शफीक़ के कारण ही सोफिया से दूर होता जा रहा है. ...दोस्त कैसे दुश्मन बन जाते हैं, वह इसी ताज़ा अनुभव से गुज़र रहा था. उसके दिल पर हर वक़्त एक आरी-सी चलती रहती. ...अब शेष बची छुट्टियां वह यहां गुज़ार नहीं सकेगा. उसे भारी तनाव रहने लगा. सोफिया से हुई मुलाकातें बराबर दिमाग में चक्कर काटती रहतीं. शफीक़ की जुदाई को बर्दाश्त कर भी ले, सोफिया को दिल से कैसे निकाले? वह बीमार पड़ गया. वह सीमा पर लड़े या यहां पर! अपने मन के भीतर बैठे दुश्मन शफीक़ से ! शफीक़ और सोफिया की उसे छोटी-छोटी बातें याद आतीं. उनसे अलग होकर जीने की कल्पना दुश्वार लगती. उनसे जुदा ज़िंदगी निर्जन और दुर्गम पहाड़ियों में निरुद्देश्य भटकने जैसी त्रासदी लगती. ...उसने यहां से हटने का फैसला कर लिया और अपनी रेजीमेंट के मुख्यालय में लौट आया. छुट्टी कैंसिल करवा ली. तब उसे जम्मू में पोस्टिंग मिली. पिता के कारण उसे हेडक्वार्टर में और यूनिट में अधिकांश लोग जानते थे. वे उसे प्यार भी करते और उसका ख्याल भी रखते. अगर शफीक़ और सोफिया उसके दिलो-दिमाग पर नहीं छाये होते तो उससे ज्यादा खुशनसीब शायद ही कोई और होता. ❐

जम्मू पहुंचने से पहले वह मां से मिलने फिर एक बार अपने घर आया. मां से अधिक दिल में सोफिया का ख्याल जो था. बस यही तमन्ना थी कि एक बार फिर वह दैदीप्यमान सूरत दिख जाये. उसकी अलख जगा देने वाली ध्वनि कानों में फिर पड़ जाय एक बार. कैसे भी एकांत का वह क्षण हासिल हो जाय तो उसके ज़ख्म को भर दे.

वह प्रार्थना के लिए कभी मंदिर न जाता था. पढ़ाई के दिनों में भी किसी देवस्थल पर अपना रोल नंबर लिखने नहीं गया. लेकिन अपनी व्यग्रता में उस रोज अत्यंत बेसहारा और निरीह-सा मंशापूर्ण हनुमानजी के मंदिर में प्रवेश कर गया था आलोक. यही नहीं अपनी जेब में एक पर्ची भी रख कर ले गया था, जिस पर लिखा था, 'मुझे सोफिया से मिला दो एक बार ...फिर चाहे जान ले लेना.' ...और डबडबाई आंखें मूंदे, हाथ जोड़े मन ही मन बड़ी करुण प्रार्थना करता एक टांग पर खड़ा रहा था तमाम देर.

फिर जैसे कोई अज्ञात संदेश मिला तो वह आशा और उत्साह से भरा कस्बे के एकमात्र पार्क की कोने वाली बेंच पर जा बैठा था. बैठा रहा अपने ही संकल्प-विकल्पों में घिरा, रात घिरने लगी. सुबह लौटना था उसे. ...और आधी रात तक मां के पहलू में बैठकर गुमसुम रोना था, कुछ पिता की याद में, कुछ सोफिया की में. वह उठ बैठा और निराश कदमों से घर की ओर चल दिया, फिर दिल नहीं माना तो शफीक़ की गली में मुड़ लिया. दरवाज़ा बंद था. खटखटाने की हिम्मत न जुटा सका. ...तब फिर अपनी हिम्मत को बुलंद कर वह डेविस के घर जा पहुंचा. लाख कोशिश के बावजूद पांव डगमगा रहे थे, दिल धड़क रहा था. कुछ क्षण वो अनिश्चय में घिरा खड़ा रहा, फिर कांपते हाथ से एक झटके में घंटी की बटन दबा दिया.

'कौन है...' हठात सोफिया के मधुर स्वर ने प्राणों में अलख-जा जगा दिया, 'मैं, आलोक!' वह जाली की ओर मुंह कर भावावेश में बोला. दरवाज़ा तपाक से खुल गया.

सोफिया ! डेविस की कजिन सोफिया ! सोफिया, उसकी प्राण ! साक्षात सोफिया थी. जो उस पाते ही बेसुध-सी एक ओर सिमट गयी. आलोक के साहस के पग उसे भीतर खींच लाये. एक क्षण को उसके ज़हन में मंशापूर्ण हनुमान जी की छवि उभर आयी. रोमांचित हो उठा आलोक.

'बैठो, आलोक !' भीतर आते ही सोफिया का स्निग्ध स्वर उभरा. एक चमत्कार के वशीभूत आलोक बैठ गया. सौभाग्य ओर-छोर बरस रहा था. न डेविस था घर में और न उसके मम्मी-पापा तथा छोटे भाई-बहन ! वे सब किसी शादी समारोह में कस्बे से बाहर चले गये थे. सोफिया अपने एग्जाम के कारण रुकी थी. और अभी-अभी तो लौटी थी शहर से, अपने कॉलेज से. वह ट्रे में एक गिलास ठंडा पानी ले आयी.

आलोक रोने लगा, 'मैं तुम्हारे बिना मर जाऊंगा, सोफिया.'

वह हड़बड़ा गयी. उसके चेहरे का रंग बदल गया. उसने आलोक की तरह ही अत्यंत भावुक स्वर में बमुश्किल कहा, 'मैं भी कहां जी पाऊंगी, आलोक.'

फिर बातचीत का सिलसिला बना नहीं. वे अलग-अलग बैठे सुबकते रहे. उन सुबकियों में एक रूहानी लय विराजमान थी. ...फिर सहसा उसे मां का ख्याल आया और सोफिया को पड़ोसियों का. तब आंखों ही आंखों में दोनों ने एक-दूसरे की भावना को ताड़ा और एक साथ दीवार घड़ी देखकर चौंक गये, 'अरे ! दस बज गये ?''

❐

शाम घिरने लगी थी. वह अपनी तैनाती की ओर चल दिया. आज ज्यादा कशीदगी थी. आज से इकतरफा युद्ध विराम हट गया. किसी नये ऑपरेशन की तैयारी चल रही थी. सेना की गाड़ी ने उसे गंतव्य पर उतार दिया. वह जिस टुकड़ी में था, वह धीरे-धीरे गलियों में समा गयी. वह सोच रहा था कि मनुष्य जब असभ्य था, गुफाओं में छुपता था, निर्वसन डोलता था, कच्चा मांस भक लेता था तब भी समूह में रहता, युद्ध के लिए नहीं, शिकार के लिए निकलता था, यानी पेट के लिए. उसका सारा उद्योग भोजन और जानवरों से अपनी सुरक्षा के लिए ही था. तब मनुष्य का मनुष्य से युद्ध नहीं होता था. तब मनुष्य की मनुष्य से शत्रुता न थी. तब न धर्म का आविष्कार हुआ था और न धन का. ...वह कांप गया.

चारों और नज़र दौड़ाकर उसने एक ऐसी जगह ढूंढ़ ली जहां छुपकर वह तीनों ओर की गोलियों और खुले आसमान की चौकसी कर सकेगा. ...वह कोई सुरक्षा चौकी तो नहीं थी पर एक अर्धचंद्राकर दीवार थी जो उसे पनाह दे सकती थी. ...उसने आगे बढ़कर पोजीशन ले ली और अपने ऑफीसर को ई-मेल कर दिया.

सब ओर सुनसान, एक भयावह सन्नाटा, जैसे-मरघट की चारदीवारी में खड़ा हो. बिजली गायब, पर घर चांद की मद्धिम रोशनी में भुतहा खंडहर से चमकते हुए. ...उसने लक्ष्य किया, पूर्वोत्तर में एक सितारों का त्रिभुज एक टीवी ऐंटीना की दायीं ओर से बायीं तरफ आ रहा है. यानी धरती घूम रही है. 'धरती अब भी घूम रही है जबकि हम सब खून से लथपथ हैं ! उसका दिल धड़क उठा...इस त्रिभुज के तीन सितारे कौन हैं ? कहीं - मैं, सोफिया और शफीक तो नहीं ! और यह ऐंटीना कोई धर्म-ध्वजा है - क्या ?'

उसके ज़हन में फिर वही बच्चा उभर आया जो उस रोज़ आग की नदी में ठंडे चश्मे की तरह मिल गया था. काश ! कि वो फिर एक बार मिल जाय... तो मां, घर, बस्ती, लड़ाकों और सेना का लिहाज़ छोड़ वह उसकी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ा दे ! उसी में शफीक है और उसी में सोफिया !...

वह भावुक होकर चुपचाप रोने लगा.

उसे आसपास का कोई होश नहीं था, जबकि शत्रुपक्ष उसकी तरह गाफिल न था. दूर दक्षिण दिशा के आसमान से एक आग का गोला आकर उसके सिर पर गिरा...और पल भर में सब कुछ स्वाहा हो गया.

सुबह को साथी उसकी जली हुई लाश यूनिट में वापस ले जा रहे थे.

२०, ज्वाला माता गली,
भिंड-४७७ ००१ (म. प्र.)

ग़ज़लें

✍ सलीम अख़्तर

ख़्वाबों से दामन बचाना, नींद से जागो ज़रा,
साज़िशों का है ज़माना नींद से जागो ज़रा.
नफ़रतों की इस फ़िज़ा में होश रखना बरकरार,
बन न जाना तुम निशाना, नींद से जागो ज़रा.
फूल वाले, हाथ वाले, ये कमां और तीर वाले,
दाम में रखते हैं दाना, नींद से जागो ज़रा.
'सारे जहां' के साथ गायें मिल के 'वंदे मातरम्',
दोनों हैं कौमी तराना, नींद से जागो ज़रा.
मसलेहत के नाम पर हर दौर में भटकायेंगे,
ये बुखारी और शबाना नींद से जागो ज़रा.
अपनी मिट्टी, अपनी नदियां, अपना है ये गुलसितां,
है यहीं पर आबो-दाना, नींद से जागो ज़रा.

वहीद मंज़िल, अंसारी वार्ड, गोंदिया-४४१ ६०१

✍ कृपा शंकर शर्मा 'अचूक'

(१)

रगों में अपनी लहू को उबाल कर देखो,
अगर है देखना खुद को संभाल कर देखो.
वो कब से सच के सहारे पे जा रहा चलता,
उसी के नक्शे कदम खुद को ढाल कर देखो.
करीब अपने जो होते हैं दूर-हो जाते,
समय की चाल को समझो न टाल कर देखो.
ये कोई खेल नहीं ज़िंदगी के जीने का,
लगी है शर्त तो ! सिक्का उछाल कर देखो.
जो भी अंजाम हो 'अचूक' देखा जायेगा,
वफ़ा का रास्ता कोई निकाल कर देखो.

(२)

बंद कमरे की हवा का रुख बदल कर देखिए,
वक़्त के इस दौर में घर से निकल कर देखिए.
बात गैरों की यहां करना नहीं मुमकिन मुझे,
दूसरों से पहले खुद कांटों पै चलकर देखिए.
हैं नहीं आसान दिल के जख़्म सब भर जायेंगे,
ज़ख्म ही भरने हैं तो मन को बदल कर देखिए.
हर तमन्ना दिल की पूरी एक दिन हो जायेगी,
शर्त है बच्चे की मानिंद तो मचल कर देखिए.
ज़िंदगी की यह पहेली आपको बक्शीश है,
प्यार ही बस शेष होगा आप हल कर देखिए.
पी तो ली जाम-ए-मोहब्बत तूने जी भर के 'अचूक',
दूर है मंज़िल अभी तो खुद संभल कर देखिए.

३८, विजय नगर, करतारपुरा,
जयपुर-३०२ ००६ (राज.)

कहानी

नाम में क्या रखा है ?

राजेंद्र सिंह गहलौत

वह जब भी कालरी के दफाइयों का नाम उस्लापुर दफाई, गोरखपुर दफाई, बिलासपुर दफाई सुनता तो मन ही मन सोचता कि ये छत्तीसगढ़ एवं उ. प्र. के कामगार अपना अपना क्षेत्र छोड़कर रोजी रोटी के चक्कर में इतनी दूर म. प्र. के इस शहडोल जिले में चले तो आये पर अपने देश, अपने गांव की मिट्टी का मोह न छोड़ सके तभी तो उन्होंने अपनी लेबर कॉलोनी (दफाई) का नामकरण अपने क्षेत्र के शहर या कस्बे के नाम पर कर डाला है. शायद ऐसा करके वे अपने गांव, अपने देश से प्रवासी होने का दुःख कुछ कम कर लेते होंगे. रोजी रोटी के चक्कर में आदमी कहां से कहां पहुंच जाता है और कैसे-कैसे समझौते कर, जीवन यापन कर, किस-किस बहाने से भावनाओं से धड़कते दिल को बहलाता रहता है. वह तो फिर भी इनसे बेहतर स्थिति में है कि यहीं शहडोल जिले का रहनेवाला है अपने घर, गांव के पास.

गांव में उसकी हालत रोज कुंआ खोदो और प्यास मिटाने वाली हालत थी. ऐसी खस्ता हालत में यह तो उसकी किस्मत अच्छी थी कि उसके भाई के नाम की खेती की जमीन जिससे कि साल भर खाने के लिए अनाज भी न मिल पाता था कालरी की हद में आ गयी. अच्छा खासा मुआवजा मिलने की आशा थी, लेकिन उसमें से बहुत कुछ हिस्सा बिचौलिये खा गये, शेष जो बचा वह भाई लेकर अहमदाबाद चला गया. वह वहीं किसी कपड़ा मिल में काम करता है और उसे वहीं के शहर की हवा रास आ गयी है. मुआवजा जब मिला था तो वह भाई का मुंह बड़ी आशा से जोह रहा था कि शायद मुआवजे की रकम में से उसे भी कुछ मिल जाये पर छोटा भाई तो सब रकम अपने पास रख कर उसे एक नया ही रास्ता सुझाते हुए बोला - "दादा! अपना हमार नाम से कालरी मां नौकरी कर लेई. सुनेन है कि जेखर जमीन कालरी लय रही है उन्हीं नौकरीऊ देई." वह निराशा से बोला - छोटकऊ ! नौकरी हमही कइसे मिली, जमीन तो तुम्हरे नाम ना है." यह सुनकर छोटा भाई और उसके साथ खड़ा कालरी का बिचौलिया ठहाका लगाकर हंस पड़े. बिचैलिया मिसिर जी कालरी के किसी लेबर यूनियन के पदाधिकारी भी थे. वे उसके कंधे पर हाथ रखकर आत्मीयता जताते हुए बोले- "लाल साहब! अपना आख़िर रहे वहै माटी के माधो ! अरे तनी गांव में बाहर निकर कर देखी दुनिया में का का हुई रहा है. अरे उत्तर प्रदेश, बिहार के तो फरारी मुजरिम दूसर दूसर के नाम से कालरी मां नौकरी कर रहे हय. अऊ छुट्टी लइके जब आपन देश गय तो आराम से हुआं एकाध डाका-कतल करिन और फेर फरार हुई के कालरी के नौकरी मा हाज़िर. अरे भईय्या ! अपना तो आख़िर अपने भाइके के नाम से नौकरी न करब ! फिर नाम मा का रक्खा है. अबहिं अपना के नाम रामसिंह है, नौकरी छोटकऊ के नाम से करिके विशंभरसिंह हुई जइहां बस. अरे नाम मा का रक्खा है, नाम बड़ा है के पेट !" और फिर वह कुछ न बोल सका. गांव में था ही क्या ? अपने हिस्से की जमीन वह पहले ही बेच चुका था. झूठे जाति गौरव के चलते वह ठकुर होने के अभिशाप को भुगतता हुआ गांव में कहीं मजूरी भी तो नहीं कर सकता था. और आख़िर वह बिचौलिये मिसिर जी के मदद से दान दक्षिणा दे दिलाकर भाई के नाम से कालरी में लोडर की नौकरी पा ही गया. और फिर गांव में एकमात्र बचे टूटे खपरैल वाले मकान को बेच कर धनपुरी कालरी में नौकरी करने लगा. थोड़े से प्रयास से कालरी की लेबर कॉलोनी में क्वार्टर भी मिल गया और फिर वह हरदम के लिए भूल ही गया कि उसका नाम कभी रामसिंह था. बस! वह विशंभरसिंह होकर रह गया. विशंभरसिंह के नाम पर जब वह अंगूठा लगा कर पगार उठाकर नीले-नीले नोट गिनता तो एक अजीब सा नशा चढ़ जाता और उसी नशे के खुमार में वह कालरी से हौली होते हुए नशे को और भी द्विगुणित करता हुआ अपने क्वार्टर की ओर लौटता. उसके साथ के लगभग सब लोडर शराब पीते थे, नशे में झूमते थे, लड़ते थे झगड़ते थे. शराब शायद कालरी के मजदूरों के लिए एक ज़रूरी चीज़ बनकर रह गयी थी. आख़िर वे लोडर रोज सुबह खदान के मुहारे में पीठ पे छिप्पी (बड़ी टोकनी) बांधे, कमर में बैटरी लगाये, सिर पर हेलमेट में जलती बल्ब की रोशनी में अंधियारे की दुनिया में हाथ में कुदाल लिये जा उतरते थे तो ऐसा लगता था कि वे मौत की गुफा में जा उतरे हैं. चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा...छत दीवाल फर्श सब काले कोयले का...और उस कोयले की काली सुरंग में उतरना कम जीवट का काम न था. वह तो ठकुर होते हुए भी जब पहली बार कोयले की खदान में उतरा था तो उसका कलेजा दहशत से दहल उठा था. अब तो खैर आदत पड़ गयी है. और उन कोयले की सुरंगों में जब दगानी (कोयले की चट्टानों को तोड़ने के लिए विस्फोट) होता तो एक बार भी तो ऐसा

लगता कि विस्फोट के साथ कोयले के बड़े-बड़े टुकड़ों के साथ उनका शरीर भी चिथड़े-चिथड़े होकर बिखर जायेगा. फिर बड़ी-बड़ी छिप्पियों में कोयला भरकर ट्राली में डालते हुए वे भी किसी काले भूत से कम नज़र नहीं आते. खदान से निकलकर एकाएक अगर वे अपना चेहरा आइने में देख लें तो शायद खुद ही डर जायें. उस पर आये दिन खदान में दुर्घटना होती रहती, सावधानी में थोड़ी चूक हुई और दुर्घटना सर पर. ऐसे कठिन काम के बदले भले ही पैसा अच्छा मिलता हो पर शायद दिनभर की कड़ी मेहनत से टूटे शरीर को राहत और कल फिर काम पर जाने का साहस शराब ही बंधा पाती थी.

धीरे-धीरे वह कालरी के माहौल का अभ्यस्त हो गया. अच्छी खासी पगार ने उसके जीवन स्तर को गांव के जीवन स्तर से काफी बेहतर कर दिया था. उसने एक मुर्रा भैंस भी खरीद ली थी जो कि क्वार्टर के सामने एस्बेस्टस शीट के शेड के नीचे बंधी रहती. दूध के बड़े डिब्बे को अपनी साइकिल में लटकाकर कुछ क्वार्टर्स में उसका लड़का दूध दे आता. बदले में कुछ अतिरिक्त पैसे और हाथ में आ जाते.

धीरे-धीरे बेटा मोहन और बिटिया गीता कब बड़े हो गये पता ही न चला. अब वे बुढ़ार में कॉलेज में पढ़ने लग गये थे. कड़ी मेहनत के बाद उसे यह सबसे बड़ा सुख हासिल था कि घर में कोई अभाव न था. बिटिया के विवाह के लिए पत्नी जोर देने लग गयी थी. और आख़िर थोड़े प्रयास से ही बिटिया का विवाह भी तय हो गया. कहते हैं ना कि "भागवान के हर भूत जोतते हैं." तो अच्छे दिनों के चलते हर मुश्किल काम आसान होते चले जा रहे थे. अब बस कुछ ही दिन बचे थे बिटिया के ब्याह में. कालरी से लोन (ऋण) भी मिल जायेगा, बस आवेदन पत्र के साथ विवाह का निमंत्रण पत्र नत्थी करना पड़ेगा. और वह एक दिन बुढ़ार में एक प्रेस में विवाह का कार्ड छपाने जा भी पहुंचा मगर जब कार्ड में बिटिया के पिता का नाम लिखने की बात आयी तो वर्षों पहले मर चुका रामसिंह का नाम फिर जी उठा और वह पशोपेश में पड़ गया. बिटिया के पिता के नाम की ज़गह अगर अपना नाम कार्ड में छपवाता है तो नौकरी जाती है और यदि भाई का नाम विशंभरसिंह छपवाता है तो नाते रिश्तेदार क्या कहेंगे. वह तो अपना नाम भूल ही चुका था. घर में पत्नी कभी नाम लेकर पुकारती न थी और बच्चे तो शहर की हवा में उड़ते हुए उसे पापा एवं पत्नी को मम्मी कहकर पुकारते थे तो वह भी अपने को कालरी के अफसरों के समकक्ष समझने लगता. कालरी में अफसरों एवं अपने साथी लोडरों के बीच वह विशंभर सिंह अथवा टोकन नं. २४ के नाम से ही पुकारा जाता था और धीरे-धीरे कब उसका असली नाम रामसिंह मर गया उसे पता ही न चला था. अब तो वह टोकन नं. २४ या विशंभर सिंह ही होकर रह गया था. फिर आज यह एकाएक रामसिंह का भूत फिर

११ जून १९५९

एम. ए. (हिंदी साहित्य एवं समाजशास्त्र), एल. एल. बी.

लेखन : लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, व्यंग्य एवं आलेख प्रकाशित।

विशेष : पाठक मंच अमलाई केंद्र का संयोजन तथा एक वर्ष तक म. प्र. प्रगतिशील लेखक संघ की बुढ़ार इकाई की अध्यक्षता.

पुरस्कार : 'रेखा सक्सेना स्मृति पुरस्कार २००१' के तहत कहानी "काके दी गड्डी" पुरस्कृत.

संप्रति : मुद्रण व्यवसाय.

कैसे जग उठा उसे समझ में नहीं आ रहा था. फिर एकाएक अगले पल ही उसे लगा कि उसके पुत्र-पुत्री किसी दूसरे के पुत्र-पुत्री होते हुए नाज़ायज़ हो गये हैं. पत्नी भले ही अनपढ़ है पर यह लांछन भरा पुत्र-पुत्रियों के पिता के स्थान पर अन्य पुरुष का नाम कार्ड में छपवाना क्या बर्दाश्त कर पायेगी ? भले ही इतने लंबे समय से अपने पति को देवर के नाम से पुकारे जाने को वह विवशता में स्वीकार करती रही हो. और फिर वह कुछ निर्णय न ले सका. प्रेस वाले से फिर आने की बात कह कर थके कदमों से प्रेस से बाहर निकल कर साइकल उठाकर थके शरीर एवं निढाल मन से साइकल चलाते हुए क्वॉर्टर की ओर लौट पड़ा.

घर पहुंचकर वह चुपचाप अनमना सा बैठ गया. पत्नी, पुत्र-पुत्री सभी ने पूछा पर किसी से वह कुछ न बता सका. आख़िर रात में जब पत्नी ने काफी ज़िद की तो सब स्थिति उसे बता डाली. ग्रामीण संस्कारों में पली धर्मभीरू पत्नी एकदम से सकते की हालत में आ गयी. इतने वर्षों से अपने पति को देवर के नाम से पुकारे जाने पर उसे पहले-पहले कुछ लज्जा, कुछ अटपटा सा लगा था पर धीरे-धीरे अभ्यस्त सी होते हुए वह आर्थिक पहलू को ध्यान में रखते हुए इस तथ्य को अनदेखा ही कर चुकी थी पर आज बिटिया के विवाह में कार्ड पर पिता के स्थान पर उसके पति के नाम की ज़गह देवर का नाम छपवाने की बात सोच कर ही उसे लगा कि उसका चरित्र लांछित हो गया है. सब नाते रिश्तेदार

उसके चरित्र को लेकर मज़ाक उड़ा रहे हैं और वह मुंह पे हाथ रखते हुए बोली -"हाय बप्पा ! बुढ़ाई दारी छिनाल होय का भाग मा लिखा रहा था ? नात रिश्तेदार सब का कहिहै - यहै ना कि बिटिया बेटवा सब छोटक बुवा से होइहे तबही तो उनकर नाम कारड मा छपा है... नौकरी रहे चाहे भडसारे में जाये पर अइसन अधरम के काम ना करा."

उसका ढाढ़स बंधाने के लिए पत्नी के कंधे पर हाथ रखा तो पत्नी को लगा कि जैसे किसी गैर मर्द ने उसके कंधे पर हाथ रखा हो और वह न जाने किसी विचित्र घृणा भरे अहसास से सिहर उठी और उसने कंधे पर रखे हाथ को झटक दिया. वह फिर रात भर न सों सका. अपना नाम कार्ड में छपवाने के साथ ही सिर्फ नौकरी जाने ही नहीं बल्कि धोखाधड़ी के जुर्म मे जेल जाने का भय भी सताने लगा. अगले पल उसे लगा कि उसे सजा हो गयी है तथा पत्नी एवं बच्चे असहाय हो गये हैं और कभी भीख मांगकर, तो कभी मजूरी कर अपना पेट पाल रहे हैं, और वह भय से सिहर उठा.

दूसरे दिन वह लड़के के पास सहमते हुए गया और सब बातें उसे बता डालीं. उसे लगा कि उसका लड़का भी पत्नी की तरह उसे ज़लील करेगा... लेकिन यह क्या ? लड़का तो ठहाका लगा कर हंसने लगा तथा अपनी बहन को भी आवाज़ देकर बुला लिया और उसे सब बातें बता डालीं और दोनों भाई-बहन हंसने लगे. बच्चों पर कालरी एवं शहर की हवा पूरी तरह प्रभावी हो चुकी थी. वे अब गांव की बधेलखंडी में बात नहीं करते बे बल्कि उच्चवर्ग की भाषा एवं सभ्यता को अपनाते चले गये थे. अतः खड़ी बोली में अक्खड़ता से पुत्र ने ज़वाब दिया - "अरे पापा ! आप भी, छोटी सी बात का बतंगड़ बनाये हुए हैं. आप और मम्मी तो पढ़े लिखे हो नहीं. पड़ोस के अंकल ने तो स्कूल में भी हम लोगों के पिता के नाम की ज़गह विशंभर सिंह ही लिखवाया है. हर ज़गह आप को विशंभर सिंह के नाम से ही जाना जाता है. चाचा विशंभर सिंह तो दावा करने आयेंगे नहीं फिर उन्हें तो सब मालुम है ही. रहा नात रिश्तेदारों का सवाल तो वे तो सब सुख के साथी हैं उन्हें कार्ड भेजो ही क्यों. वे सब गंवई लोग हैं उन्हें तो हल्दी चावल का न्यौता ही देना पड़ेगा. कार्ड तो यहां कालरी में आपके अफसर एवं दोस्तों तथा मेरे दोस्त एवं गीता की सहेलियों के लिए छपवाने हैं. पापा आप तो बिल्कुल भूल ही जाओ कि आपका नाम कभी रामसिंह था, नहीं तो इतनी अच्छी नौकरी भी जायेगी और ढेर सारी परेशानियां अलग उठनी पड़ेंगी. आप कोई अकेले नहीं हो जो किसी दूसरे के नाम से कालरी में नौकरी कर रहे हो. यहां बहुत सारे लोगों को हम जानते हैं जो दूसरे-दूसरे के नाम से कालरी में नौकरी कर रहे हैं.

अगले पल ही उसे लगा कि उसकी अपेक्षा उसके पुत्र-पुत्री अधिक समझदार, व्यवहारिक एवं देश दुनिया की समझ रखने वाले हैं और एकाएक उसे लगा कि सिर पर से कोई भारी बोझ उतर गया हो.

और फिर पिता की ज़गह विशंभर सिंह का नाम डालकर निमंत्रण पत्र छप गये और पुत्र-पुत्री उन्हें उत्साहपूर्वक बांटने भी लगे. पर वह अपढ़ होने की स्थिति में मन की भाषा से कार्ड को पढ़ते हुए कार्ड में पुत्री के पिता के स्थान पर छोटे भाई के नाम को देखते हुए न जाने क्यो धुंधलाई नज़रों से कार्ड को निहारते बैठ रहा. शायद आज पहली बार उसे अहसास हो रहा था कि रामसिंह नाम के साथ वह भी अंदर से कहीं मर गया था और शायद अब वह कभी अपनी पत्नी से आंख न मिला सकेगा. लेकिन फिर अगले पल ही अच्छी नौकरी की अच्छी पगार से गांव से कालरी के जीवन के अब तक के समय की आर्थिक स्थिति में आये परिवर्तन एवं सुख-सुविधाओं का ख़्याल कर वह सब भुलाकर ढी मन से बेशर्मी भरी मुस्कान चेहरे पर चिपका कर कार्ड बांटने कॉलोनी की ओर निकल पड़ा. हां, शायद अब रामसिंह का नाम सिर्फ पूरी तरह मर ही न चुका था बल्कि कहीं अत्यंत गहराई में दफ़न भी किया जा चुका था. जहां से कि वह कभी फिर उभर कर सामने न आ सके और शायद गांव का एक सीधा-साधा किसान रामसिंह भी पूरी तरह मर चुका था और नये नये रूपों में, नये-नये नामों से शहरी करण, औद्योगीकरण के प्रदूषण से प्रदूषित एक नया ही इंसान जन्म ले रहा था.

सिंह प्रिंटिंग प्रेस, बस स्टैंड के सामने,
जिला-शहडोल, बुढ़ार-४८४११०

लघुकथा

लड़की

आभा पूर्वे

दोपहर का सन्नाटा था वह अपनी मां के साथ इस अजनबी शहर में आयी थी. मां को इसी शहर में नौकरी मिल गयी थी. पिता दिल्ली से नहीं आ सके थे क्योंकि वह वहां छोटी सी दुकान का मालिक था.

लड़की दोपहर के सन्नाटे में मां को स्कूल से लाने चली जा रही थी. तभी बीस लड़कों ने उसे सड़क से खींच कर एक कमरे में बंद कर दिया था. लड़की बीसों नवयुवकों की हवस की शिकार होती रही. शाम को लड़की बेहोशी की हालत में खून से लथपथ मिली. हालात को समझते ही शहर में तनाव फैल गया. दंगे की हालत बन गयी.

शहर में स्थिति को शांत करने, सांप्रदायिक सौहार्द के जत्थे निकल आये हैं. पुलिस चौकस है कहीं कोई दुर्घटना न घट जाये. शहर शांत है. जत्थे वालों के चेहरे पर खुशी है. और लड़की को होश में लाने की क्रिया जारी है सलाइन चढ़ायी जा रही है. लड़की होश में नहीं आती. शायद लड़की अब होश में नहीं आयेगी.

संपादिका 'नया हस्तक्षेप', शरतचंद पथ,
मशाकचक, भागलपुर - ८१२ ००१

कहानी

कान्हा, माफ़ करना

चूल्हे के ठीक सामने बैठी हुलासो पता नहीं किन ख़्यालों में गुम थी कि गोद में सो रहे डेढ़ वर्षीय कान्हा का भी उसे ध्यान नहीं रहा. वह तो चौंकी - पूरन, जानकी और मोहन के मिले जुले स्वर से -

'अम्मा, कान्हा उलटकर आग में पड़ जायेगा - सोयी है क्या ?'

'हैं... ए...' एकदम से कान्हा को बांहों में भर उसने सीने से लगा लिया.

'कब से पका रही है अम्मा - ये आलू बने नहीं क्या ? अब तो आग भी बुझने को है.'

'कित्ती देर लगेगी अम्मा - बहुत भूख लगी है... जल्दी दे न.' - मासूम जानकी ने सूखे होठें पे ज़बान फेरी.

'अभी बन जायेंगे... देख छोरी बन ही तो रहे हैं... तेरी आंखें लाल हुई जा रही हैं, जा सो ले... मैं उठा लूंगी...' कहते हुए हुलासो ने आस पास पड़ी सूखी पत्तियां और लकड़ी के टुकड़े चूल्हे में डाल दिये.. आग भभकी और पानी में गुड़ड़-गुड़ड़ की आवाज़ के साथ कुछ उबलने लगा.

'अम्मा... कभी से बोल रहा हूं कुछ अच्छा सा खाना दे- सुबह भी कुछ खाया नहीं... अब चावल आलू देगी न.'

मोहन की बात के ज़वाब में हुलासो ने आंखें उठाकर बेटे की तरफ़ देखा... उसका पिचका हुआ पेट और सूखा चेहरा... दो खूबसूरत आंखें जिनमें सिर्फ़ खाने की आस दिखाई पड़ती थी... हुलासो से कुछ कहते न बना... एक आह भरकर रह गयी. ठुनकता... पैर पटकता मोहन... खाना दे... खाना दे की रट लगाये जा रहा था कि पूरन ने पास आकर कहा- 'बाबू को आने दे... अम्मा आलू-भात पकाकर देगी... तब तक आ - मेरे पास लेट जा... सोयेंगे दोनों.' 'नहीं छोना... भूक लगी है... छो जाऊं... कैसे छोऊं'- मोहन फिर ठुनक पड़ा.

'ऐसे जैसे मैं'... पुरानी फटी दरी पर लेटकर पूरन ने भाई को प्यार से खींच लिया. धीरे-धीरे थपकने लगा उसे... वही तो सबसे बड़ा था चार भाई बहनों में... उम्र में भले ही मात्र दस बरस का था मगर समझने लगा था, गरीबी के मायने पहचानने लगा था. मां की चुप्पी... बाबू का काम की तलाश में यहां वहां भटकते रहना... चूल्हे पर चढ़ी पतीली... कालिख़ की पर्तों से भारी होती चिमनी... उसके नाज़ुक दिमाग़ से टकराने लगी थी अपने भाई बहनों की भूख... छत के खपरैल और दीवारों की ईंट ईंट से नज़र आती भूख... गुम हो रहा था बचपन आस-पास कंटीली झाड़ियों में. जंगली बेर, फल बीनते सूखे जंगलों में लकड़ियां बीनते और पानी की तलाश में कुयें, बावड़ी, सरोवर में झांकते हुए... थककर चूर हो जाता था बदन... भूख अंदर सुलगती रहती थी और आंखें कमज़ोरी से झपकतीं... बंद होतीं... यही खेल था उनके जीवन का भी और किस्मत का भी... उसे अक्सर याद आता था वह स्कूल डूंगरपुर का जहां वह अपने गांव कोटड़ी से पैदल जाता था... मुश्किल लगा था शुरू में पर धीरे धीरे अच्छा लगने लगा पाठशाला जाना... जानकी भी साथ रहती... अम्मा एक डिब्बे में रोटी और प्याज़, अचार भी देती थी... मास्टरजी कहते थे- 'जो लोग मेहनत करते हैं उनका जीवन सुखी होता है... अच्छा होता है.'

डॉ. अज़रा 'नूर'

'कैसा होता है अच्छा जीवन... क्या उसमें भरपेट खाना नहीं मिलता ? पहले तो अम्मा दोनों समय खाना देती थीं... फिर एक समय हुआ... फिर कभी एक समय भी नहीं... कहती हैं सब ख़त्म हो गया... सूखा पड़ गया... उसकी पाठशाला भी छूट गयी... बग़ैर फीस भरे मास्टरजी आने नहीं देते'- अम्मा उसे मोहन जानकी की देखभाल का ज़िम्मा सौंपकर कहीं से बीन चुनकर कुछ खाने की व्यवस्था करती है- कभी मक्की उबाल देती है तो कभी ठूंठ... कभी चना-मूंगफली... पर कल से तो कुछ भी तो नहीं मिला... फिर क्या पका रही है शाम से ... शायद कुछ अच्छा हो... उठकर धीरे से वह अम्मा के पास पहुंचा... उदास नज़रों से वह चूल्हे में बुझते जा रहे अंगारों की राख को देख रही थी. पति रामा भी दबे पांव अंदर आकर उसके पीछे बैठ गया था. अपने कंधे पर पूरन का हाथ महसूस कर उसने अपनी हथेली से उसे छुआ और पास बिठाकर चूमा. 'अम्मा खोल न... उसमें क्या उबल रहा था- कल से कुछ खाया नहीं... भूख लगी है'... पूरन धीमे से बोला.

'कुछ नहीं बेटा... कुछ भी तो नहीं... वह तो पानी उबलने की आवाज़ थी'.

'नहीं... मुझे दिखा... अब सब सो गये... मैं नहीं सोऊंगा... बता क्या है इसमें... बाबू... कहो न अम्मा से... भूख लगी है'- पूरन उठकर बाप के पास खड़ा हो गया.

'दे दे हुलासो... एक आध आलू उबला हो तो दे दे'- रामा ने धीरे से कहा.

'हो तो दूं न... नहीं है कुछ.'

'शाम से पक रहा है... देती ही नहीं अम्मा... भूख से मेरी जान निकल रही है.' पूरन रुआंसा हो गया.

'हुलासो, दे बच्चे को... बहुत भूखा है... बताती क्यों नहीं, क्या उबाल रही थी ?'

'क्या उबाल रही थी... लो देख लो... यह रखा है.' झुंझलाकर हुलासो ने फटी धोती के छोर से पतीली पकड़ी और जमीन पर रखकर ढक्कन हटा दिया. पूरन ने बेसब्री से झांका... 'ये... ये तो पत्थर हैं... अम्मा पत्थर... इन्हें क्या कोई खायेगा.'

'पत्थर - हुलासो... सचमुच ये तो पत्थर ही हैं... रामा ने गर्म पानी में ही उंगली डालकर छूते हुए हैरानी से पत्नी की तरफ़ देखा.

'क्या देख रहे हो मेरी तरफ़... कोई चारा नहीं था पूरन के बाबू... बच्चों को बहलाने के लिए चूल्हा जलाकर यही'... तड़पकर उसने मन की भड़ास निकालनी चाही... 'अपनी धरती का अनाज तो जैसे सपना बन गया है. थोड़ा बहुत उधार भी कोई कब तक दे. जब चुकाने का ठिकाना नहीं... ऐसा भी क्या रूठना इंदर भगवान का कि सारे खेत बांझ हो जायें... दूर दूर तक जलते सूरज के सिवाय कुछ भी तो नहीं... चट्टान सी सख़्त धरती और सूखे ठूंठ से खड़े ये पेड़... कहीं कुछ भी तो नहीं रह गया... सिवा पत्थरों के... हे भगवान... कहां से भरेगा टाबर का पेट... जब इनके नसीब के दाने नहीं थे तो क्यों उतारा इन्हें धरती पे... भूखा प्यासा मरने के लिए... नहीं देखी जाती बच्चों की तड़प मुझसे... पूरन के बाबू... कुछ करो.' तेज़ हिचकियों के साथ पति की बांह पकड़कर हुलासो रोती रही... रोती रही.

पत्नी का दर्दभरा, रुदन और बच्चों के सूखते जा रहे शरीर देखकर रामा का मन भी दहलने लगा. किसी ज़माने का कड़ियल, मज़बूत, कद-काठी वाला वह हंसमुख किसान आज एक निर्बल और असहाय जीव में बदल चुका है. वे दिन तो अब सिर्फ यादों में रह गये हैं जब उसके लंबे-चौड़े खेतों में भरपूर फसल होती थी... बाड़े में बंधे गाय-बैल को चारा देती हुलासो घूंघट से उसे ताकती लाज से लाल हो जाती थी... पूरन और जानकी की किलकारियां उसकी छाती को हर्ष से फुला देती थीं ... फिर तो ऐसी आंखे फेरी बादलों ने... इतना निर्दयी हो गया मानसून कि हवा के झोकों में ही सब उड़ाता चला गया... धीरे धीरे कुछ बिका... कुछ मिटा... ख़त्म होता गया सभी कुछ... हाय... अनायास ही निकल पड़ी रामा के होठों से... एक बरस-दो बरस हो तो कोई झेले... एक के बाद एक पांच बरस से यही अकाल... यही सूखा... कैसे कोई संभाले... दूसरों तक अनाज पहुंचाने वाले खुद दाने-दाने को मोहताज हो गये... नाते रिश्तेदार, संगी साथी सभी एक नाव पर सवार... कौन किसे बचाये... कितने ही गांव छोड़कर चले गये और कितने ही मर खप गये... कोई गिनने वाला, न कोई सुनने वाला... सरकार की तरफ़ से मदद, संस्थाओं की ओर

रामनगर, जिला नैनीताल (उत्तरांचल),

एम. ए., बी. एड., बी. जे., पी.-एच. डी. (अंग्रेजी)

लेखन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में ग़ज़ल, गीत, कहानी, शोध-परक निबंध व लेख प्रकाशित.

प्रकाशन : 'आईना', 'सबसे बड़ा सच' (कथा संग्रह), 'तड़प', 'चुप कैसे रहूं', (ग़ज़ल संग्रह) व अन्य ८ पुस्तकें प्रकाशित. एक काव्य संग्रह 'अपना वतन' तथा कथासंग्रह 'अपूर्वा एवं अन्य कहानियां' प्रकाशनाधीन.

पुरस्कार : शिक्षा काल से अब तक अनेक संस्थाओं, समितियों, अकादमियों द्वारा विभिन्न स्तरों पर पुरस्कृत व सम्मानित.

विशेष : उदयपुर के आकाशवाणी केंद्र से नियमित कई विधाओं में रचनाओं का प्रसारण तथा गीतकार के रूप में अनुबंधित. अनेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा आयोजित गोष्ठियों में संचालन व उद्घोषणा.

संप्रति : राजस्थान कृषि विद्यालय, उदयपुर में सहायक प्राध्यापिका (अंग्रेजी).

से मिलने वाले अनाज ने केवल अख़बारों का पेट भरा... लोगों का पेट तो खाली ही रहा... मज़बूरी के सहारे भी महीनों गुज़ारे पर अब तो द्रोपदी चीर सी लंबी हो रही कतार ने वह आसरा भी छिन लिया... क्या खायेंगे और कैसे जीयेंगे ये बच्चे ? भीगी पलकें एक बार फिर ज़मीन पर सोये बच्चों पर पड़ीं... हड्डियों के ढांचे में बदल रहे हैं ये... अगर कहीं भूख से ये... भगवान न करे मर गये तो क्या सह पायेगी हुलासो... और मैं भी... नहीं... नहीं... भूख से मरते नहीं देख सकता मैं बच्चे...' कभी नहीं...बड़बड़ा उठा रामा... 'देख हुलासो मान ले- सुखिया की बात... बचा ले औरों का जीवन... तैयार हो जा'... उसने कंधे से पकड़कर पत्नी को झिंझोड़ ही डाला.

'क्या... पूरन के बाबू... पहले तो किसी तरह हां न भरते थे. अब तुम भी'... आंसुओं से तरबतर चेहरा उठाकर हुलासो ने रामा की ओर देखा.

'सही है... मैं किसी हाल में इस बात पर हामी न भरता... पर लगता है भगवान को यही मंजूर है कि हम अपने कान्हा को'... दांत भींचते हुए रामा ने अपनी बात अधूरी छोड़ दी.

'नहीं... नहीं... मैं अपने कान्हा को किसी को नहीं देने वाली'... इतनी ज़ोर से उसने बच्चे को बांहों में जकड़ा कि वह कसमसाने लगा. 'अपने ज़िगर के टुकड़े को जीते जी अलग करना... मुझसे न होगा... इतने कठोर मत बनो'... किसी फरियादी की तरह हुलासो विलाप कर रही थी.

'तू मां है... तो मैं बाप हूं इसका... देख रहा हूं कि ये बाकी तीन बच्चे अब और भूख सहन न कर पायेंगे... जीते जी मर जायेंगे. इन्हें बचाने के लिए कान्हा को सुखिया के हाथों सौंपना ही होगा... बात समझ ले हुलासो... सुखिया जाने कब से खुशामदें कर रही है... आज भी मैं घर लौट रहा था तो पीछे-पीछे चली आयी... रास्ता रोककर बोली... 'रामा अब आख़री बार बोलती हूं मान ले मेरी बात, कल मैं यह गांव छोड़कर जा रही हूं.. अरे मैं तो इस खेती-बाड़ी के कारण यहां थी. अब खेत ही सूखकर चटक गये तो मैं यहां रहकर क्या करूं... मेरा घरवाला छोटी सी सही पर सरकारी नौकरी में तो है न... शहर में अपने गुज़ारे लायक सब कुछ है... सिवाय बच्चे के... तू बस कान्हा को मेरी झोली में डाल दे... तीन हज़ार रुपये मैंने गिनकर रखे हैं... कान्हा के नाम पर. नहीं... तेरी मदद के लिए... तू मेरी ममता की पुकार सुनेगा तो तेरे तीनों बच्चों का कुछ समय अच्छा कट जायेगा. इस बीच तू गांव से निकल कहीं मेहनत मजूरी करना... तेरे परिवार का दुख का समय कट जायेगा और मेरी झोली भी खुशी से भर जायेगी... ठीक कहती हूं न रामा.'

'हां-हां... ठीक कहती है सुखिया और सही कहते हो तुम भी... ग़लत तो मैं हूं जो पिछले कई दिनों से चक्कर लगा रही सुखिया को बच्चे के पास फटकने नहीं देती... अरे कैसे दे दूं... नौ महीने तक अपने खून से सींचा है मैंने इसे, अकाल के बीच भी छाती से दूध पिलाकर बड़ा किया है पूरन के बाबू.' हुलासो की आंखों से टपटप आंसू गिरते जा रहे थे.

'हुलासो, यह सब तो तूने सभी बच्चों के लिए किया है, पर क्या तू चाहेगी कि इतने जतन से पाले गये बच्चे भूख के मारे जान दे दें... नहीं चाहेगी न... समझदार है...' रामा ने प्यार से उसे बहलाने की कोशिश की, 'अब छोड़ दे इतनी ज़िद... सब सो रहे हैं... रात का वक़्त है... किसी को कुछ पता भी नहीं चलेगा· ला मुझे दे' · हाथ बढ़ाकर उसने पत्नी की गोद से कान्हा को उठा लिया.

'नहीं...नहीं...पूरन के बाबू...ऐसा मत करो. कल को यह बालक बड़ा होगा...जानेगा...समझेगा...तो क्या कहेगा इसका मन...क्या सोचेगा अपने मां-बाप को लेकर... तनिक ध्यान तो करो' · हुलासो ऊपर से नीचे तक जैसे दर्द की तस्वीर नज़र आती थी.

'अब ध्यान, ज्ञान का समय न रहा बावरी... बच्चों को पत्थर उबालकर बहलाने से अच्छा यह है कि तू अपने कलेजे पर एक बार को पत्थर रख ले... रही बात बालक की... अभी यह दूध पीता बच्चा है... क्या जाने... क्या समझे... फिर जब समझने लायक होगा तब... शायद तब हमें माफ़ कर देगा... करेगा न बेटा. माफ़ करना... हमें माफ़ करना... कान्हा.' भरे गले से इतना कहकर रामा ने बच्चे का माथा चूम लिया और झटके के साथ बाहर निकल आया.

सहायक प्रध्यापिका,
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर-३१३००१.

अशेष अंकुर

✍ डॉ. विद्याभूषण

सदी के गुज़र जाने पर
बीते दशकों की डायरी
जब जब पलटोगे तुम
तो घाव की तरह टीसते ये वर्ष
तुम्हें हमेशा याद आयेंगे.
घर, पड़ोस या दूरदराज़ इलाकों से आती
दहशत की बेनाम दस्तकें,
मुर्दा व्यवस्था के सामने
आतंक के जबड़ों में बेहोश पड़ी भूख,
बदनुमा अफ़वाहों के बीच
सच्चाइयों से रू-ब-रू होने की
हलक में अटकी प्यास,
अपाहिज मूल्यों की छत के नीचे
बेचैन हो चुकी नींद,
अनेक नामालूम चीज़ों के ख़िलाफ़
आम शहरी का नपुंसक गुस्सा...

बेशक, कैलेंडर के सभी दागदार पन्ने
इतिहास की धमन भट्टी में
सड़-गल-मिट जायेंगे.
उस स्महले दिन के इंतजार में
यह बची-खुली काली रात हम जियेंगे,
निस्याय होने की बांझ अनुभूति
इम्तहानी सफ़र में रुकावट नहीं बनेगी,
ताकि आख़िरी ढलान पर उतरती
यह सदी किसी बंद सुरंग की ओर
वक़्त को न ले जाये,
वर्तमान के उजाड़ प्रार्थना भवन में
ख़ानाबदोश आंसुओं-सी गीली शुभकामनाएं
अशेष संभावनाओं के अंकुर बन फूटें.

प्रतिमान प्रकाशन, किशोर गंज,
हरमू पथ, रांची ८३४ ००१.

लौटते हुए

गेट खोलने के लिए वे पहले की तरह बाहर नहीं आये. पता नहीं हैं भी या नहीं. मगर फोन तो उन्होंने ही उठाया था. पेड़-पौधे-फूल... उसके भीतर छुपे कीड़े... पंछी - सभी उस गहराते सन्नाटे में सांस रोककर बैठे हुए थे जैसे हवा ने सबको जकड़कर रखा हो.

कालबेल बजायी तो उन्होंने अंदर से ही कहा - "आ जाओ." उनकी आवाज़ कुछ भारी तथा थकी हुई लगी.

"कैसे हैं आप ?" बैठते हुए महज औपचारिकतावश सवाल पूछना पड़ा क्योंकि बातें होते हुए भी इस क्षण किसी एक बात का सिरा पकड़ में नहीं आ रहा था... कितने आत्मीय तथा सहज रिश्ते भी यकायक पराये तथा दूर हो जाते हैं. ...और वक़्त होता तो वह सीधे रसोई में चली जाती या डाइनिंग टेबल पर बैठकर बातें करती... मगर अभी तो उसे कमरे में बैठे-बैठे ही बेचैनी होने लगी. बगीचे का एक तिकोना हिस्सा दिखाई दे रहा था जहां फूलों की महक तथा मच्छरों की अबाध भिनभिनाहट मंडरा रही थी. गमलों का रंग उतर चुका था और पत्तों के मुरझाये हुए डंठल मरे हुए कीड़ों की तरह लटके हुए थे.

"क्या माली नहीं आ रहा है ?"

"कभी-कभार आ जाता है." उन्होंने सिगरेट निकालते हुए कहा.

उसने अपनी निगाहें बाहर से हटाकर अंदर कमरे में केंद्रित कर लीं. जहां की हर चीज़ यूं उपेक्षित रखी थी- जैसे महिनों से उन्हें किन्हीं सुकोमल हाथों के स्पर्श का इंतज़ार हो.

जाले, धूल और तस्वीरों पर जमी हल्की परत उनकी घोर उदासीनता को दर्शा रही थी. जिस अल्मारी में किताबें रखी रहती थीं वहां अब दो पुरानी तस्वीरें रखी थीं.

"और क्या चल रहा है ?" कमरे का मौन तोड़ते हुए और सिगरेट का धुआं छोड़ते हुए उन्होंने शुष्क आवाज में पूछा. उन्हें अपने एकांत में दखल देना पता नहीं क्यों उसे अजीब सा लगा. उनके मोटे चेहरे पर झुर्रियां बेहद घनी और गहरी हो गयी थीं. नाक भी अनावश्यक रूप से लंबी तथा उभरी हुई लग रही थी. क्या उन्होंने सारी ताकत वाली, तन-मन को चुस्त-दुरुस्त रखने वाली, बालों एवं त्वचा को चमकीला बनाये रखने वाली और उम्र को छुपाने वाली दवाएं लेनी बंद कर दी हैं या वे बीमार थे. या खाना ठीक से नहीं खा रहे थे.

"आप इस बीच स्वस्थ तो थे." उसने झिझकते हुए पूछा. उसे हल्का सा पछतावा भी हुआ कि उसे व्यवहारिकता निभाते हुए बीच में एकाध बार फोन तो कर लेना चाहिए था.

"क्यों, मुझे क्या होना था ? एकदम ठीक था." वे एकाएक तमककर बोले शायद ऊपर से वे अपनी अस्वस्थता तथा अवसाद की झाईं को प्रकट नहीं करना चाहते थे.

"बस यूं ही पूछ लिया. इस बीच आपसे बात भी नहीं हो सकी थी..."

"हां, बहुत दिनों बाद याद आयी तुम्हें भी."

उनकी आवाज़ में हल्का सा व्यंग्य उतर आया.

"वो नहीं है तो तुम भी क्यों आओगी मुझसे मिलने. पहले तो मैं तुम दोनों की फोन वार्ताओं से परेशान हो जाता था. इधर तवे पर रोटी जल रही है और वो बातें किये जा रही है. उसे कुछ याद ही नहीं रहता था. इधर मैं चाय लेकर बैठ उसका चेहरा देख रहा हूं- और उधर वो खिलखिलाये जा रही है. आखिर ऐसी क्या बातें होती थीं तुम दोनों के बीच. मैं कभी-कभार पूछता तो वह टाल देती. कहती, अरे जाने भी दो, हमारी बातें सुनोगे तो सिर धुन लोगे."

डॉ. उर्मिला शिरीष

वे अतीत में चले गये जहां दोनों की खिलखिलाहटों... हास-परिहास का निनाद गहरे कुयें में डुबकी लगाती गगरी के समान डुबडुब होता गुदगुदाता-सा अहसास अब भी जीवंत था...

"हम दोनों अपने तनाव कम करने के लिए दिनभर की बातों को दोहराते थे. जैसे किसी कुलीग का नाम 'ताऊजी' रख दिया या किसी को 'मृग-मरीचिका' और 'भूरी रेत' कहकर अपनी भड़ास निकाल ली. सच आज भी उन लोगों को पता चल जाये कि हम लोग ऐसे नाम रखे थे तो वे हमारे बाल नोच डालेंगे." उसने कमरे की स्तब्धता तथा बोझिलता को दूर करने के लिए उत्फुल्ल होकर जोर-जोर से बोलना शुरू कर दिया. वे भी कुछ लम्हों तक उन बीते पलों का आनंद लेने लगे. इन क्षणों में उनकी मुस्कराहट में पवित्रता तथा बचपना झलक रहा था. ठीक इन्हीं क्षणों उसके मन में विचार उठा कि अगर इन्हें अलग से... संबंधविहीन... पहचानविहीन... होकर देखा जाये तो वे कितने अच्छे लगेंगे... "धत् तेरे की." कहकर वे हल्का सा हंस दी.

"अजीब हो तुम लोग भी. लेकिन उसने मुझे कभी नहीं बताया. वो कभी मुझे शामिल नहीं करती थी. तुम दोनों ने काम से ज्यादा मस्ती की. क्यों." वे बुझे हुए स्वर में बोले जैसे किसी

बहुत बड़े सुखद रहस्य से अछूते रह गये हों !

"अब हम दोनों कहां ?" कहते-कहते रुक गयी वह. उन दोनों के बीच का अतीत चिड़िया की तरह फुर्र से आकर बैठ गया था और फुर्र से उड़ भी गया. वहां फिर सन्नाटा था. दो मनुष्यों के बीच सघन होता सन्नाटा... गहरी उदासी में डूबा... सूनी दीवारों पर सिर्फ कीलें रह गयी थीं. तस्वीरें शायद वो ले गयी होगी. क्या-क्या ले गयी होगी इस घर से और क्या कुछ छोड़ गयी होगी... वरना उन दोनों के... बेटी के कितने फोटो लगे हुए थे.

"ऐसा क्या हो गया था आप दोनों के बीच कि..."

महिनों से दबा आहत प्रश्न सायास ही उसके मुंह से निकल पड़ा. हालांकि उसके पास कुछ पेपर्स थे उनके दिये हुए जिन पर उनके हस्ताक्षर करवाने थे मगर वह पर्स में से निकालने की हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी.

"हो तो बहुत पहले गया था...शायद ! उसने सोच रखा होगा. उसका मैथ्स बहुत अच्छा था जिसका प्रयोग उसने अपने ही जीवन में कर डाला. ...क्या तुम्हें नहीं लगता कि मनुष्य जीवन....जीवन से जुड़ी अपेक्षाएं, आकांक्षाएं सभी कुछ गणित के समान होता है. सब अपने-अपने तरीके से गुणा भाग करते हैं. सही उत्तर आ जाये तो सारा हिसाब सही...वरना शुरू से आख़िर तक... ग़लत ही ग़लत..."

"किस समय का." जानबूझकर पूछा उसने, क्योंकि अब वे एकदम से बात करने के मूड में आ चुके थे.

"बेटी के बड़े होने का ! वह कोर्ट-कचहरी के झंझट से बचना चाहती होगी या बेटी की नज़रों में अपनी इमेज बनाये रखना चाहती होगी. लेकिन ताज्जुब कि बेटी ने उसको कुछ नहीं कहा. उसे बुरा भी नहीं लगा. उसको इतना भी ख्याल नहीं रहा कि वह अपना निर्णय लेते वक़्त मुझे भूल गयी. बेटी ने भी वही किया. मेरी चिंता तथा रोक-टोक उसे असहनीय लगने लगी थी. वे एक-दूसरे को सपोर्ट करके अपने को कहां ले जा रही हैं, नहीं जानती वह. उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि मैं उनके बिना कितना अकेला हो जाऊंगा," कहकर उन्होंने एक और बल्ब जला दिया. शायद पहले की रोशनी उन्हें कम लग रही थी. इस बीच वे कई बार चश्मे के ग्लास साफ़ कर चुके थे. बल्ब जलते ही कमरे का फीकापन तथा दीवारों का सूनापन और भी ज्यादा चुभने लगा. उन्होंने छोटा सा पैग बनाते हुए कहा - "इतने वर्षों का साथ था. आखिर कुछ वर्ष और इंतज़ार कर लेती."

"किसका ?" शब्द निकलते ही उसे लगा कि वह ग़लत सवाल पूछ बैठी है. उनके चेहरे की भाव-भंगिमा में हल्का सा परिवर्तन भी लहराया लेकिन उन्होंने ऊपर उठती नाराज़गी को ज़ब्त कर लिया.

"मेरी मौत का." वे सपाट ढंग से बोले जैसे मौत के बारे में न बोलकर किसी ऋतु के आगमन की बात कह रहे हों.

उसको अपने हृदय पर हल्का सा आघात महसूस हुआ.

१९ अप्रैल १९६९,

एम. ए., पी-एच. डी.

लेखन : *अब तक लगभग पांच दर्जन कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. कुछ कहानियों का अंग्रेजी, उर्दू व उड़िया में अनुवाद.*

प्रकाशन : *'वे कौन थे', 'मुआवज़ा', 'केंचुली', 'सहमा हुआ कल', 'शहर में अकेली लड़की', 'रंगमंच' (कहानी-संग्रह), 'धूप की स्याही' व 'खुशबू' (संपादित कहानी-संग्रह).*

पुरस्कार : *'समर साहित्य पुरस्कार (१९९९)', करवट कला परिषद द्वारा 'रत्न भारती पुरस्कार', अभिनव कला परिषद द्वारा 'शब्द शिल्पी' सम्मान एवं काशीबाई मेहता पुरस्कार (२०००).*

संप्रति : *स्थानीय कन्या महाविद्यालय में हिंदी की सहायक प्राध्यापिका.*

क्या वे मौत की कामना इसलिए करने लगे कि...उनकी ज़िंदगी किसी और के लिए अनुपयोगी हो गयी थी...नहीं...सब कुछ होते हुए भी...हर मनुष्य अपने आप में अलग भी तो होता होगा...

"नैसर्गिक ढंग से स्वतंत्र हो जाती. मुझसे स्वतंत्रता चाहिए थी उसे. हां, उसे लगता होगा कि कब तक घिसटेगी मेरे साथ. अब मैं किसी काम का नहीं रह गया था. पर मैं भी तो जीवन को लेकर इधर मोहासक्त हो गया. मेरे मन में यही भाव रहता था कि उसके दिल में कभी हीनभावना नहीं आनी चाहिए कि मैं उसकी तुलना में...कुछ ज्यादा ही बूढ़ा हो गया हूं...कमजोर हूं. वह जवान है, सुंदर है. उसे तो तुम सभी ने गुमान करा दिया था कि वह चिर यौवना है, उम्र से परे है. देखो प्रकृति से कोई नहीं जीत सकता. आज जो मेरी हालत है वही उसकी नहीं होगी क्या ? कोई हमेशा जवान रहा है क्या ? फिर भी मैं सिर्फ उसकी खातिर उम्र को धोखा देता रहा. आश्चर्य कि मेरे जैसे व्यक्ति ने ढोंग किया. किसके लिए."

एकाएक वे चुप हो गये क्योंकि उन्हें ज़ोर का ठसका लग गया था. वे देर तक खांसते रहे. उनकी पूरी देह झटके खाती रही. गिलास रखते वक़्त उसने देखा कि उनके हाथों में हल्का सा कंपन था. आंखों में धुंध उतर आयी थी...

"आपको नहीं लगता कि आप दोनों के बीच उम्र के अलावा भी कुछ असामान्य था ? आपने उनके साथ हीन-भावना से ग्रसित होकर जाने-अनजाने में ज्यादतियां कीं."

उसे लगा अपनी आलोचना सुनकर वे एकदम भड़क उठेंगे या भन्नाकर उठकर चले जायेंगे. मगर वे बुत की तरह बैठे अपने बालों में उंगलियां घुमाते रहे. जिस तरह वे पीछे गरदन की मालिश कर रहे थे उससे लग रहा था कि या तो उनका बी. पी. बढ़ा हुआ है या सिर तप रहा है या वे स्वयं को थामकर बैठे हुए हैं. "वे तो हमेशा आपकी बातें माना करती थी मगर आपने उनके चारों ओर प्रतिबंधों की बाढ़ जो लगा दी थी. आप अपने हाथों में उनके जीवन का रिमोट कंट्रोल रखना चाहते थे. क्या किसी भी इंसान को इतना संत्रस्त करना चाहिए ?"

"ओ ! तो, ऐसी बातें किया करती थी वो मेरे बारे में. किस तरह के प्रतिबंध थे उसके ऊपर. क्या वो बाहर नहीं जाती थी ?" क्या वो अच्छा खाती-पहनती नहीं थी ? क्या वो अपनी मर्जी का जीवन नहीं जीती थी...और अगर मैं कुछ कहता था तो किसके भले के लिए. बताओ, उसी के लिए न. सब कुछ उसके तथा बेटी के भविष्य के लिए. उसके मन में पूर्वाग्रह थे जबकि जीवन पूर्वाग्रहों से नहीं चलता है. दुनियादारी के बारे में वह कितना जानती है! तुम लोग शब्दों को पकड़कर बैठ जाते हो. जरा सी टोका-टाकी की नहीं कि कह दिया टॉर्चर कर रहा हूं. टॉर्चर का मतलब जानती हो क्या होता है ?'

आवेश से थरथराते उनके होठों से थूक गिर रहा था और चेहरे पर उतरती लाल रंग की क्रुद्धता को वह हतप्रभ सी देखती रह गयी. उसे याद आया, वह बताती थी कि पीने के बाद घर में कैसा कुहराम मचता था. रात-रात भर बड़बड़ाते थे...गालियां देते थे...पहले तो कितनी बार उसके मुंह खोलने या ज़वाब देने पर हाथ उठा दिया करते थे...बच्ची थरथर कांपती रहती थी...रोती रहती थी...हाथ जोड़-जोड़कर गिड़गिड़ाती थी...खिड़कियों की दरारों में कपड़े-ठूंसने पड़ते थे...फिर उल्टियां...पूरे घर में मचमचाती दुर्गंध...फिर घंटों तक सफाई होती...अजीब-अजीब सी आवाजें निकालकर कराहना...दिनभर अर्धमूर्छित अवस्था में पड़े रहना और दो-तीन दिनों तक उन दोनों के दरम्यान अनेदखा अबोला बना रहता. उसके तो होंठ सिल जाते थे...जब वो नहीं बोलती तो ताने मारते...और ऐसी बातें सुनाते जो उसके दिल को चीरकर रख देती थीं... जो उसको पागलपन की हद तक तड़पाती थीं. एक ऐसा असहनीय वातावरण तथा व्यंग्यों का गाढ़ा धुआं भर देना कि मछली की तरह तड़पती रहती थी. सुकून पाने के लिए, चैन से रात का खाना खाने के लिए तरस जाती थी.

"मैं क्या करूं...कहां जाऊं तुम्हीं बताओ सच कहती हूं मुझे उसके शरीर से घृणा और घिन होती है...इसलिए नहीं कि बूढ़े हैं बल्कि इसलिए कि वे बातें उन क्षणों में मेरे दिल पर चोट करती हैं. कोई गांठ है जो उनके भीतर बंधी है..." बाहर उसके साथ सड़कों पर घंटों खड़ी रहती थी वो. घर जाने से डरती थी - बचती थी.

"क्या वो मेरे बारे में और भी बातें किया करती थी. वैसे उसे मुझसे हमेशा शिकायत रही है. उसका मन अपनी तरह से चलता था. अब मेरी समझ में आता है कि वह सीधा-साधा विरोध न करके कुछ ऐसा करती थी जिससे उसकी नाराजगी तथा वितृष्णा झलकती थी. घोर उपेक्षा से भरी रहती थी वो. हां उसने बड़ी नफ़ासत से खुद को जब्ज़ किया हुआ था. बांधकर रखा. उसके स्पर्श में एक अजीब सी ठंडक और बेजान बेबसी रहती थी. उसने कभी खुलकर बात नहीं की. वह मुझसे लड़ सकती थी, उलाहना दे सकती थी...सारी जिम्मेदारियों से मुक्त थी वो मगर..."

वे फिर चुप हो गये. उनकी आंखें चश्मे के पार एकदम बंद-नज़र आ रही थीं. हल्का प्रकाश उनके चेहरे पर चकत्तों की तरह पड़ रहा था. विरहानुभूति तथा वेदनानुभूति के भाव साफ देखे जा सकते थे उनकी उन डूबी, अधमुंदी आंखों में. उन्होंने उठकर दोनों किवाड़ खोल दिये और परदों को गोल-गोल लपेटकर किवाड़ों के पीछे धकेल दिया जैसे अपने भीतर के किसी गंदे धूल भरे बोझ को यूं ही लपेटकर धकेल देना चाहते हों.

"घुटन होने लगती है." कहकर उन्होंने अपने सीने पर उंगलियों से थपथपाया. उसे याद आया वो कभी भी दरवाजा खुला नहीं रखते थे. परदे क्या एक सींक भी इधर-उधर नहीं हो सकती थी. इसी तरह तो उनके जीवन को कस रखा था उन्होंने. कितनी छुट्टियां लेनी हैं...कितना पैसा किसमें खर्च करना है...बार-बार उनके दिल में यह खरोंच लगती थी कि अंडे देने वाली मुर्गी की तरह पाल रहे हैं वे और हमेशा आत्मविश्वास तोड़ते हुए धमकी देते थे कि उनके बिना दो कदम नहीं चल सकेगी वे ? क्या सचमुच बंधन...इतने कांटों भरे होते हैं या और भी कुछ ऐसा था शब्दों से परे जिसे वे व्यक्त नहीं कर पाती थी.

"मुझे हल्का सा आभास तो था, नहीं शंका थी कि वह मुझसे दूर हो रही है. मैं सोचता था कि बुढ़ापे में मनुष्य का मन अविश्वासी हो जाता है तभी तो पीछा करता था उसका फोनों पर...हमेशा सुनता था कि किससे बात कर रही है उसकी आवाज़ का उतार-चढ़ाव, उसके चेहरे की भाव-भंगिमाएं... एकदम सतर्क रहती थी."

मैं उसकी डाक देखता था. उसके आने-जाने का समय नोट करता था कि कहां जाती है, किससे मिलती है. कई बार आत्मग्लानि भी होती थी. मगर क्या वह सचमुच अकेली होना चाहती थी. इतने वर्षों तक वह साथ रहकर भी दूर थी. मैं ही बेवकूफ बन गया. नहीं पकड़ पाया उसके मन को, ज़ज्बातों को. उसकी उम्र की लहरों को नहीं समा पाया, बांध पाया. मैं उसकी फिजिकल प्रजेंस का पीछा करता रहा जबकि वह इससे बहुत आगे निकल चुकी थी. जीवन में यही सब तो रहस्यमय होता है. मेरे लिए तो सब कुछ छलनामय रहा..."

किसने किसके साथ छल किया यह तो आप दोनों का मन ही जानता होगा मगर..."वह कहना चाहती थी. लेकिन लिहाज के कारण न कह सकी,"

"क्या तुम्हें पता था ? कभी कुछ तो बताया होगा ?"

अकस्मात ही उन्होंने उसे कटघरे में खड़ा कर दिया और कुछ इस तरह पूछा कि वह अंदर तक हड़बड़ा गयी. उसे अपनी आवाज़ कंठ में फंसती हुई लगी. वह समझ गयी. तेज रोशनी उसके चेहरे पर टिकी थी जैसे उनके विश्वास का, बल्कि शेष जीवन की शक्ति का आखिरी वृत्त उसकी आंखों से निकलने वाला हो. वह ज़वाब तलाश ही रही थी कि वे बोले -"जब मुझे ही पता न चल सका तो तुम्हें कैसे पता चलेगा ?" इतनी धीमी तथा कराहती आवाज़ उनके मुंह से निकली कि लगा नहीं कोई और बोल रहा है. उसने राहत की सांस ली जैसे बीच कुयें में से लटकते हुए बाहर खींच लिया हो.

"आप क्या कर रहे हैं इन दिनों ?" उसने विषयांतर करते हुए कहा. उसको अपनी सांसें घुटती हुई महसूस होने लगीं. पानी का गिलास लेकर अंदर चली गयी. ठंढ होते हुए भी फ्रिज का पानी इस समय उसे बेहद अच्छा लगा.

"अब कोई काम नहीं रहा. जिनके काम होते थे जब वे नहीं हैं तो क्या काम रहेगा ? खाली रहता हूं. पहले तो मुझे फुर्सत ही नहीं रहती थी. बेटी के काम होते थे. स्कूल की तैयारी, सुबह का नाश्ता. जूते कहीं होते थे, बेल्ट कहीं इतनी बड़ी हो गयी थी मगर एक्सपेक्ट करती थी कि हाथ में सब कुछ दो. पढ़ाई के लिए डांटना पड़ता था. देर रात तक टी. वी. देखना...देर से उठना...और उसकी सहेलियों के इतने फोन आते थे कि बाप रे बाप. कितनी बहस होती थी मेरी उसके साथ. जैसे भाई-बहिन लड़ते हैं. फिर उसको लेकर हम दोनों में बहस होती. पहले तो उन दोनों के लौटने का इंतज़ार करता था. हर बात का, हर काम का समय बंधा रहता था. अब किसके लिए चाय और किसके लिए खाना. दिन ही नहीं कटता है. पहले तो दिन छोटा पड़ जाता था. मैं थककर चूर हो जाता था. कितना खाता था मैं. मगर अब तो ज़िंदा रहने के लिए शरीर की ज़रूरत के मुताबिक खा लेता हूं. एक दिन बनाकर रख लेता हूं, तीन-चार दिन चल जाता है." अविराम बोलते हुए उन्हें देखती रही वह. हर लफ़्ज उनकी आंखों तथा चेहरे पर अपनी प्रकृति के अनुरूप रंग छोड़ रहा था. शायद लगातार बोलने के कारण वे थक गये थे. थकान भी तन से ज्यादा मन की थी...मन से ज्यादा भावनाओं की थी...और भावनाओं से भी ज्यादा समय की थी जो उनके सामने एक महाशून्य की तरह फैला था बेरंग...

"देखो, बेटी भी आती है या नहीं...उसके सामने कितनी चुनौतियां हैं. कितनी लंबी ज़िंदगी है...क्या अपनी स्वतंत्रता इतनी महत्वपूर्ण होती है कि आप उसके लिए अपने पिता को भी त्याग दें. मैं तो अपनी मां को अभी तक ज़वाब देने की हिम्मत नहीं कर पाता था. मुझे उसकी ही चिंता है कि वह स्वयं को कैसे संभालेगी. मैं कभी भी उसे होस्टल में नहीं रखता, लेकिन मैं देखता था कि उसके अंदर कोई तूफान ठहरा हुआ है...जब बोलती थी तो लगता था इसके पास इतने अटैक करने वाले शब्द कहां से आते हैं ?"

उन्होंने अपने दोनों खाली हाथों को घुटनों पर थपथपाया और उठ खड़े हुए. बाहर अंधकार चांदनी में घुलकर मोहक एवं रहस्यमय लग रहा था. हल्की बहती हवा ने अंदर प्रवेश कर लिया था.

"मैं कुछ बना दूं आपके लिए." उसने औपचारिकतावश पूछा.

"ना! ना! बना रखा है. खा लूंगा. तुम्हें बुरा तो नहीं लगा. मैं लगातार सिगरेट पीता रहा. बेटी को तो हल्की गंध से खांसी

लघुकथा

कैक्टस

✍ रितेंद्र कुमार अग्रवाल

खुशी-खुशी उत्साह से नये मकान में सामान वग़ैरह जमा कर जब थोड़ा वक्त मिला तो सोचा चलो बाहर चलकर अड़ोस-पड़ोस देखा जाये. बाहर आकर इधर-उधर नज़र दौड़ाई तो आश्चर्य हुआ कि पड़ोस के घर में कैक्टस ही कैक्टस. लोग फूल लगाते हैं, आकर्षक पौधे लगाते हैं. पर यहां कैक्टस ? सोचा पूछूंगी.

कभी कोई दिखा ही नहीं. इसलिए उत्सुकता मन में ही रही. अचानक ही एक दिन बाज़ार से सामान लेकर लौट रही थी तो देखा एक वृद्धा मकान में प्रवेश कर रही हैं. मैंने तेजी से चलकर पास जा कर कहा - 'मां जी नमस्ते !'

'नमस्ते, लेकिन मैंने पहचाना नहीं !'

'पहचानेगीं भी कैसे. कभी मुलाकात ही नहीं हुई. हम पड़ोस में नये आये हैं. आप कभी दिखी ही नहीं. आज दिखीं तो मुलाकात हो गयी.'

'अच्छा किया, अंदर आओ.'

'अंदर फिर कभी आऊंगी. आज तो यहीं बाहर ही से बात करूंगी. आप अकेली ही रहती हैं ?'

'हां, लेकिन अकेली भी नहीं.'

'वह कैसे ?'

'ये पेड़-पौधे और नौकर-चाकर भी तो हैं.'

'अच्छा, आपसे एक बात पूछूं ?'

'पूछो !'

'ये कैक्टस ही क्यों लगा रखे हैं आपने ?'

'अच्छे लगते हैं.'

'क्यों ?'

'ज़िंदगी ही जब कैक्टस हो जाये तो फूल कैसे अच्छे लगेंगे. वक्त ने इतने कष्ट दिये हैं, शूल चुभाये हैं कि अब तो इनसे प्यार हो गया है. फिर फूल के सूख कर झरने का डर रहता है. कैक्टस हमेशा ही हरे रहते हैं. बस, इसीलिए.'

सुनकर मैं आश्चर्यचकित रह गयी.

'नमस्ते, फिर आऊंगी माता जी,' कहकर मैं वापस हो ली.

११/५०० मालवीय नगर, जयपुर ३०२ ०१७

ग़ज़लें

✍ रमेश कटारिया 'पारस'

हरेक आदमी चेहरे हजार रखता है,
दिल में नफ़रत और आंखों में प्यार रखता है.
इसलिए खा जाता है धोखा क्यूं कि,
किसी न किसी पे वो एतबार रखता है.
जब भी चाहो तुम इसको ख़रीद सकते हो,
हर एक आदमी अपना बाज़ार रखता है.
नशा दौलत का हो या सत्ता का उतर जाता है,
खुमारी वो नहीं इसमें जो मेरा यार रखता है.
बाहर से दिख रहा है तुमको ये हंसता हुआ,
अपने दिल में गम ये बेशुमार रखता है.

१५, गंदीगर गली, झांसी रोड, भिंड-४७७ ००१ (म. प्र.)

जाने कैसा कमाल है यारो,
हरेक आंख में सवाल है यारो.
कल वो फिर से भूखा सोया है,
क्या यही नया साल है यारो.
ये ज़िंदगी का मेला हम घुस के देखेंगे,
अभी तो पॉकिट में माल है यारो.
अभी तो और लडूंगा दौरे गर्दिश से,
अभी तो खूं में उबाल है यारो.
एक दिन चांद भी होगा अपनी मुट्ठी में,
अभी तो पहला उछाल है यारो.

१५, गंदीगर गली, झांसी रोड, भिंड-४७७ ००१ (म. प्र.)

आने लगती थी. खूब नाराज़ होती थी." कहकर उन्होंने अधजली सिगरेट ऐश-ट्रे में डाल दी और शराब की बोतल उठकर टेबल पर रख ली. गिलास पास में रखा था. रातभर पीने की तैयारी होगी- शायद वे बताती थीं. उनके इस तरह पीने से उसे कितनी घिन लगती थी. फिर एक दिन नहीं हर रोज़...हर किसी के साथ...हर ज़गह...पीकर होश नहीं रहता था...कि वे क्या बोल रहे हैं...? उनकी सारी सभ्य आदतें सारे संस्कार...सारा आभिजात्य कितने घटिया स्तर पर उतर आता है. बात करें तो आफत न करें तो आफत... नहीं अब बर्दाश्त नहीं होता...मैं सहन नहीं कर पाऊंगी..." कितना दर्द और निराशा उनकी बातों में रहती थी.

"दो-तीन बजे तक टी.वी. देखता रहता हूं," वे स्वतः ही बोले.

अब इनको कौन संभालेगा. रात में कुछ हो गया तो. अगर इनको सचमुच अपनी बेटी की चिंता है और उनका ख्याल है तो क्यों नहीं वे सब कुछ छोड़ देते हैं - जिसके कारण वो घर छोड़ने को विवश हो गयी. ...लेकिन क्या...इन तीनों के जीवन का सत्य यही है...जो वह देख रही है...सुन रही है...या देख चुकी थी कहीं कुछ गहरे में और भी रहस्य छुपे हों...इनकी शराब पीने की आदत के पीछे कहीं कोई और बात तो नहीं है.

उसने उठते हुए खाली पड़े घर को देखा. पूरा घर ही स्मृतियों की आंधी में कांपता हुआ लग रहा था. अंदर अंधेरा था. नीरवता थी. उदासी और भुतहापन फैला था. टी.वी. रेडियो...सब ढके रखे थे.

"आपकी मां"... उसने पूछा.

"उन्हें गुज़रे हुए सात माह हो गये हैं... ये भी कुछ समय पहले चली जाती तो ठीक रहता. मैं एडजस्ट कर लेता. मगर ऐसे वक़्त में गयी है जब मैं उस पर पूर्ण रूप से निर्भर हो गया. पता नहीं वो या बेटी इस घर में लौटकर आयेगी भी या नहीं. जीवन में मुझसे बड़ी ग़लती हो गयी कि मैं उस पर मानसिक रूप से निर्भर हो गया था. कभी किसी को किसी पर निर्भर नहीं होना चाहिए. आप पूरी उम्र किसी को प्यार किये जाते हैं, उसका अच्छा, बुरा सोचने के पीछे पचासों झंझट पालते हैं और अंत में पता चलता है कि..." अधूरा वाक्य छोड़कर वे बाहर निकल आये.

"लेकिन...किसी भी रिश्ते को चाहे वह खून का हो या सामाजिक इतना अपना समझने का भ्रम नहीं पाल लेना चाहिए कि रिश्तों की आड़ में व्यक्ति का अपना अस्तित्व, अपनी पहचान ही ख़तम हो जाये. आप हर रिश्ते को अपने हिसाब से नचाते रहे, आपने नहीं सोचा कि वह रिश्ता मात्र रिश्ता नहीं जीता-जागता इंसान है...." वह कहना चाहती थी मगर न कह सकी. अजीब सी गंध उसे महसूस हुई. वहां से उठने वाली अनुभूतियां उसे सहमा गयीं.

"आप बैठिए, मैं निकल जाऊंगी," पता नहीं क्यों उसका गला खराश से भर उठा.

"उससे मिलो तो कहना गाड़ी ठीक से चलाया करे. उसे याद नहीं रहता कि क्या करना है. पेपर्स संभालकर रखे, बुद्धू तो है वो वैसा ही लापरवाह बेटी को भी बना देगी..." उनके शब्दों में गहरी चिंता झलक रही थी. शेष शब्द उससे बर्दाश्त नहीं हो रहे थे. उसने पलटकर देखा, वे वहीं खड़े थे जहां कभी उन दोनों को गाड़ी निकालकर दिया करते थे. खाली पड़े गैराज के सामने उन्हें खड़ा छोड़कर वह तेज-तेज कदमों से बाहर निकल आयी. चार-छः फर्लांग चलने के बाद उसे याद आया कि जिन पेपर्स पर हस्ताक्षर करवाने आयी थी वो तो रह ही गये हैं...मगर वापिस जाना...किसी भी सूरत संभव न था...

एफ-९५/२२, तुलसी नगर,
भोपाल-४६२ ०२३.

आमने / सामने

गांव का परिवेश ही मेरे रचना संसार का मूल उत्स है !

✍ डॉ. उर्मिला शिरीष

(बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठें खोलना चाहता है. लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने/सामने.' अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, बिकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नीसिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, सुमन सरीन, फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, डॉ. प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा और पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह और रमेश कपूर से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है डॉ. उर्मिला शिरीष की आत्मरचना.)

एक रचनाकार को अपनी यात्रा से गुज़रते हुए उन्हीं तमाम अनुभवों से गुज़रना पड़ता है जो उसकी रचना के भीतर चल रहे होते हैं. हर क्षण वह पात्र, वह स्थिति, वह घटना पूरी शिद्दत के साथ दिल-दिमाग पर छायी रहती है. उसका दुःख, उसकी करुणा, उसके क्रिया-कलाप सब कुछ छाये रहते हैं. रचनाकार मजबूर होता है उसके साथ जीने के लिए, हंसने-रोने के लिए.

बचपन स्मृतियों में रचा-बसा है और कुछ ज़गहें, कुछ दृश्य और कुछ चेहरे कभी दूर नहीं हो पाते हैं. जन्म-जन्मांतरों का साथ हो जैसे. पलाश के घने जंगल और तपती धूप में दहकता हुआ उनका रंग. महुए के पेड़ पहले हल्के पीले सुआपंखी रंग के फिर बादामी रंग के पके हुए महुए और दूर तक फैली उनकी मादक गंध. उस गंध के पीछे महुए के विशाल पेड़ों का डर से भरा साया... उस रास्ते को एक सांस में दौड़कर पार करती थी क्योंकि माना जाता था कि वहां चोर या डाकू, महुआ प्रेमी भालू छुपे हो सकते हैं. जहां तक निगाह जाती - हरे-भरे खेत, रहट से गिरती मोटी पानी की धार, आसमान में उड़ती पतंगें, पंछी. गांव की बखरी के ऊपर पीपल के पेड़ की सघन शाखें झुकी रहती थीं जिन पर अनगिनत हरियल तोते आकर बैठा करते थे. शाम होते ही जानवरों की आवाज़ें आतीं. उनके खुरों से उठती धूल आसमान को धुंधला बना देती. गहराती संध्या में जो चीज़ सबसे ज्यादा लुभाती थी, वो था मंदिर के आले में टिमटिमाता दीया. मंदिर जाना नियमित होता था क्योंकि इस बहाने अपनी सहेलियों से मिलने का मौका मिलता था. घंटे की ध्वनि से हम उस सन्नाटे को तोड़ते थे जो सांझ होते ही गांव के घरों पर आकर पसर जाता था.

फिर उन वीरान रातों में लड़इयों के लड़ने की, कुत्तों के रोने की या दूर कहीं गोली चलने की दहशत को सुबह होते ही भूल जाती. हाथ चक्की पर गेहूं या ज्वार पीसती औरतें - साथ में उठती स्वर लहरियां. उधर उजाला फैल रहा होता और इधर पनिहारिनें मटके उठाये चली आ रही होतीं. हंसी ठिठोली. चुहलबाजियां. काम की मार के बीच उनकी हंसी ! सास, ननदों तथा पति की प्रताड़ना से टपकते उनके आंसू! ... वही स्थान होता था अपनी व्यथा कथा कहने का. मेरे पास तब जिज्ञासु मन था. मैं उनके साथ होती. उनके बीच में होती. मेरे भीतर मित्रता को लेकर जो गहरा और स्थायी भाव बना उसके पीछे उन दो सहेलियों की प्रगाढ़ मित्रता थी ... जो चेचक में एक ही तरह से, एक दिन आगे-पीछे मृत्यु को प्राप्त हो गयी थीं. वह संयोग मात्र हो सकता था, पर इसका मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा. पड़ोस में दो बार डाका पड़ा होगा. डाकुओं के पांवों की आवाज़ आज भी मेरे कानों में सुनाई दे जाती है. गाय रंभाई कि डाकू आने का संकेत. टिटहरी बोली कि डाकू होने का भय. रात-रात भर पहरा देते लोग. दीवारों में बंदूक चलाने के स्थान बनाये गये. यहां तक कि महिलाओं को भी बंदूक चलाना सिखाया गया. कैसे-कैसे किस्से सुनने को मिलते थे. डाकू मोहरसिंह और माधोसिंह के या अन्य छोटे गिरोह के डाकुओं के. पड़ोस के गांव में सात घरों को जब डाकुओं ने जला डाला था... वह रात हमारी अंतिम रात थी गांव की. सुबह हम लोग बैलगाड़ी पर बैठ कर डबरा के लिए रवाना हो गये थे जहां मेरे पिता प्राइवेट प्रैक्टिस किया करते थे. एक चेहरा और जो मुझे कभी नहीं भूलता, जिसके जीवन ने मेरे मन को बेहद मथा था. पड़ोस में रहने वाली अद्वितीय सुंदरी बती, जो बचपन में ही ससुराल से वापस आ गयी थी क्योंकि उसका पति पागल था. उसका रूप और चरित्र दोनों ही चर्चा और कुचर्चा में रहते थे लेकिन तब मुझे आंतरिक, दैहिक और आत्मिक-जीवन की अतृप्त व्यथा समझ में नहीं आती थी. बाद में जब मैंने उसके

जीवन को समझा तो 'मुआवजा' जैसी कहानी लिखी जो 'अवकाश' पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई थी. बाद में उसका पुनर्विवाह कर दिया गया था, वह दिन और आज का दिन उसको मैंने नहीं देखा. एक विचित्र किंतु कड़वी सत्य घटना मैंने और देखी. अपने बड़े बेटे के लिए उल्टी परिक्रमा लेती मां को जो लड़के के मरने की कामना के लिए होती थी. पति की मृत्यु के बाद उसकी विधवा अपने बेटे को छोड़कर दूसरे घर जा बैठी थी. बिदा क्या हुई थी बेटे को सोता छोड़कर मुंह अंधेरे चली गयी थी. बहुत बाद में उसी गांव से गुज़रते हुए उसने अपने बेटे को देखने की इच्छा जाहिर की थी. कई और चेहरे तथा जीवन मेरी स्मृतियों में ज्यों के त्यों समाये हुए हैं. उनको अपनी कहानियों में उतारना पता नहीं कब संभव होगा लेकिन इन्हीं अनुभवों ने मेरे भीतर की संवेदनात्मक मिट्टी को निश्चय ही उर्वरा बनाया है.. गांव का परिवेश ही मेरे रचना संसार का मूल उत्स है. वहां बाहर की दुनिया में ये तमाम घटनाएं तथा पात्र थे, तो भीतर कमरे में - तमाम पत्रिकाएं और पुस्तकें भरी रहती थीं. कल्याण, रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद, गांधी, दिनकर, गुप्त जी की तमाम पुस्तकें. बच्चों की लगभग सभी पत्रिकाएं आती थीं. उनको पढ़ना तब कितना चमत्कारिक लगता था. दूसरी दुनिया में विचरण करने जैसा क्योंकि खेत-खलिहान में बैठते मेरा अधिकांश समय पढ़ने में ही व्यतीत होता था.

वहीं मैंने देखा था अफसरों, नेताओं तथा गांववालों का जमघट. मेरे ताऊजी ग्राम-पंचायत के अध्यक्ष थे. कांग्रेस पार्टी के सदस्य. उनका आसपास के गांवों में ज़बरदस्त प्रभाव था. हमारे पूर्वज अपनी विद्वता तथा कभी 'दतिया महाराज' के 'महाराज' होने के कारण विद्या-बुद्धि तथा पांडित्य के कारण सम्मानित और पूज्यनीय थे. दुश्मनी तथा दुर्जनता का खूंखार रूप भी मैंने देखा था और त्यौहारों के उल्लास जिये थे. मेरी कहानियों में गांव की कोई न कोई घटना तथा पात्र ज़रूर होता था.

यूं लेखन की शुरुआत बहुत मामूली-सी बात से हुई थी. मेरे ट्यूशन-टीचर ने एक थीम हम लोगों को दी थी, जिस पर मैंने कहानी लिखकर दी थी. उन्होंने शाबासी देते हुए कहा था कि तुम कहानी लिख सकती हो, लिखा करो. तब मेरी प्रथम कहानी ग्वालियर से प्रकाशित 'नवभारत' के रविवारीय संस्करण में छपी थी. अपने अंतर्मुखी स्वभाव के कारण मैं अपनी बात किसी से नहीं कह पाती थी. आंसू मेरी आंखों की कोरों पर थमे रहते. स्वाभिमान इतना कि किसी से एक कागज़ न मांगू. पिता वैसे तो बेहद प्यार करते थे ...पसंद की चीज़ें लाते थे लेकिन उनकी डांट का भय, थरथर कंपा देता था. मैंने अपने पिता को बहुत संघर्ष करते हुए देखा था. उनके संघर्ष का प्रभाव मेरे ऊपर सबसे ज्यादा पड़ा. वे जहां-जहां रहे उस स्थान पर पुनः नहीं लौटे. उन्होंने वहां से कभी कोई चीज़ लानी ठीक नहीं समझी. जब हम लोगों को लेकर वे १९७७ में भोपाल में आये तो लगा सारा संसार ही नया है. तब इंडस्ट्रियल एरिया में न तो इतनी फैक्टरी थीं न कोई परिवार. फैक्टरी शुरू होते ही रोज़गार की तलाश में न जाने कहां-कहां से लड़के आते थे. हम लोग स्वयं पढ़ाई के साथ-साथ फैक्टरी के काम में मदद करते थे. वे हमारे जीवन के कठिन दिन थे पर बहुत कम दिनों तक हमें उन कठिनाइयों में जीना पड़ा क्योंकि उसके बाद बिज़नेस जितनी तेजी से गति पकड़ता गया उतनी तेजी से समृद्धि ने हमारे परिवार को स्थापित कर दिया था. मैं तब कमरे के एक कोने में बैठकर लिखती थी. सुबह तीन बजे से पढ़ना ...फैक्टरी में काम करना और हाथ में कोई न कोई उपन्यास होता, मुझे याद है एक पत्रिका का शुल्क दस रुपये मैंने पिता से पूछकर भेजा था. उस वर्ष १९८१ में मैंने एम. पी. पी. एस. सी. की लिखित परीक्षा पास की थी. साथ ही एम. ए. की परीक्षा भी जिसमें प्रावीण्य में मेरा दूसरा स्थान आया था. बाद में तृतीय स्थान वाले लड़के ने पुनर्मूल्यांकन करवाकर दूसरा स्थान पा लिया था और मुझे तीसरे स्थान पर धकेल दिया था. जीवन में पहली बार अनुभव हुआ कि योग्यता को अन्य साधनों से पीछे किया जा सकता है. साधन शब्द से पहली बार साक्षात्कार हुआ. फैक्टरी में काम कर रहे लड़कों के जीवन संघर्षों को लेकर मैंने कई कहानियां लिखी थीं जो मेरे प्रथम कहानी संग्रह 'वे कौन थे' में संग्रहित हैं. शुरू में कहानियां भावावेग तथा तात्कालिक प्रतिक्रिया के रूप में लिखी जाती थीं. भाषा, शिल्प तथा अन्य शास्त्रीय विधानों पर मेरा ध्यान ही नहीं जाता था. बस एक धुन सी सवार रहती थी कि लिखना है. तमाम तरह के दबाव-तनाव तथा अवसाद रहते थे. तब भी पाठकों के पत्र-प्रतिक्रियाएं आती थीं. मैंने कभी भी अपनी कहानियां छपने के पहले किसी को पढ़वायी नहीं क्योंकि न मेरा कोई साहित्यिक गुरू था न मार्गदर्शक. बाहर की दुनिया में क्या हो रहा है इसका मुझे एहसास तक न था जबकि 'वे कौन थे' की समीक्षाएं 'दिनमान', एवं 'क्लिट्ज' सहित कई पत्रिकाओं में छपी थीं. लेखकीय स्वतंत्रता क्या होती है मैं नहीं जानती थी. एक घटना ने मेरे भीतर ज़बरदस्त भय बैठा दिया था. हुआ यह कि मेरे पिता तथा भाई कहीं रिश्ते की बात करने जा रहे थे. मेरा संग्रह भी साथ लिया होगा. गर्व से बतोयेंगे कि लड़की लिखती है. संयोग से उसमें संकलित 'सूर्या इंडिया' में प्रकाशित कहानी 'कन्या' संकलित थी. कहानी पढ़ने के बाद दोनों का इतना मूड खराब हुआ कि उन्होंने वहीं किताब के टुकड़े कर डाले और घर आकर जो बातें सुनायीं, वह मैं कभी नहीं भूल पायी. बाद में उन्होंने मेरी कहानियों पर निगाह रखनी शुरू कर दी लेकिन आज वही पिता - मेरे बाबूजी, गर्व के साथ बताते हैं कि मैं लिखती हूं. मैंने वही लिखा जो देखा है. अपने आसपास का परिवेश और यथार्थ. कोई कितनी भी बड़ी दलीलें दे लेकिन स्त्रियों का जीवन आज भी

पुरुषों की हां और ना के बीच झूलता रहता है. मैंने अपनी ही प्रिय (?) को किस तरह की यातनाओं को सहते देखा है. कोई फिल्म, कोई सीरियल, कोई कहानी उसका दस प्रतिशत हिस्सा नहीं होगा. 'शहर में अकेली लड़की' का दर्द अंश मात्र है फिर भी वह मेरी रातों की नींद को उड़ा देता है. यह कैसी विडंबना है कि लड़की का घर न मायके में होता है न ससुराल में. 'शून्य', 'केंचुली', 'सिगरेट' सहित कई कहानियों में स्त्री जीवन का दुःख और संघर्ष उभरकर आया है क्योंकि मैं उस संघर्ष की साक्षी रही हूं. तब मुझ पर यह आरोप लगाया गया कि मैं सिर्फ़ स्त्री जीवन की ही कहानियां लिखती हूं. ऐसा नहीं है कि मैंने अन्य पात्र नहीं लिये हों. 'रंगमंच', 'स्वांग', 'निर्वासन', 'बांधो न नाव इस ठांव बंधु', 'हैसियत', 'किसका चेहरा', 'पुनरागम'. ऐसी कहानियां हैं जिनमें पुरुष पात्र ही प्रमुख रूप से उभरकर आये हैं. मेरी कहानियों में कल्पना नहीं रहती, न ही चौंकाने वाला कोई घटनाक्रम. बार-बार नैतिकता, न्याय तथा भ्रष्टाचार पर सवाल उठाता मेरा मानव मन अस्तित्व की तलाश पर जाकर टिक जाता है. मरणासन्न स्त्री का झूठ बोलना सिर्फ़ संतान के जीवन के लिए, लेकिन उसके स्वयं के जीवन का मूल्य ! जब यह कहानी 'इंडिया टुडे' में छपी तो इसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई. 'समंदर' लिखते हुए चार वर्षीय बालक सामने खड़ा था. अपने पिता की मृत्यु से बेख़बर, पापा के इंतज़ार में. स्त्री अपने जीवन का निर्णय स्वयं ले सकती है · मैं यही कहना चाहती थी. सिर्फ आंसू बहाने से जीवन नहीं चलता. कहानी का अंत पाठकों को बेहद पसंद आया था.

'भाग्यविधाता' तथा 'उस रात का सपना' दोनों कहानियों में राजनीतिक तथा प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अंदरूनी सच को उजागर किया है मैंने. जीवन में आ रहे अवमूल्यन ने समूची सामाजिक व्यवस्था तथा जीवन पद्धति को कितनी गहराई से जकड़ा हुआ है. मेरे साथ काम करने वाली कुलीग, मंत्री की पत्नी बनते ही कैसे पहचानने तक से इंकार कर देती है और जब उसका पति मंत्री पद से हटा दिया जाता है तो उसकी हालत कितनी दयनीय हो जाती है. इन दोनों ही चेहरों को मैंने देखा था. वही हाल आज की राजनीति का है ? झूठ, भ्रष्टाचार, स्वार्थ पूरे करने के तरीके ! ऊपर से नीचे तक फैला है यह जाल. 'चांदी का वरक' कहानी के नायक डॉक्टर की पीड़ा को मैंने देखा था. 'स्वांग' कहानी के पीछे मेरे अंदर चलने वाली तमाम वेदनाएं ही थीं. लड़की कितनी भी पढ़-लिख जाये उसकी हैसियत एक सामान्य औरत की ही रहती है. डॉ. कमला प्रसाद जी ने इस कहानी को 'वसुधा' में प्रकाशित किया था. इस कहानी के अलावा भी कमला प्रसाद जी ने मुझे उस समय होने वाले तमाम आयोजनों में शामिल किया. ममता कालिया, सुधा अरोड़ा के साथ मेरा कहानी पाठ रखा था. कहानी संग्रह 'रंगमंच' के

लोकार्पण के बाद काशीनाथ जी के साथ मेरा कहानी पाठ उन्होंने ही रखा. वे पहले व्यक्ति थे जो मेरे कहानीकार को सामने लाये. इस संदर्भ में मैं डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय का भी उल्लेख करना चाहूंगी, जिन्होंने मुझे हमेशा अपने द्वारा संपादित पत्रिकाओं में स्थान दिया. हां, उनकी संपादकीय दृष्टि से कहानी पास होनी चाहिए अन्यथा कहानी वापस करने के उनके तर्कों का कोई ज़वाब नहीं होता ? गोविंद मिश्र जितना स्पष्ट बोलते उनकी बातों में उतनी बारीकियां छुपी होतीं. लेखन की बारीकियां उनसे सीखी जा सकती हैं. बार-बार वे मेरे लेखन को चुनौती देते रहे. मैं राजेंद्र यादव की शुक्रगुज़ार हूं कि उन्होंने 'चीख' कहानी का अंत बदलवाकर उसे एक नया आयाम दिलवाने में मेरी दृष्टि खोली. यही कारण है कि इस कहानी की बेहद प्रशंसा हुई. 'चीख', 'पत्ते झड़ रहे हैं', 'बांधो न नाव इस ठांव बंधु', 'निर्वासन' तथा 'धरोहर' कहानियों को लिखते हुए मुझे उसी यातना में जीना पड़ा. लेकिन संवेदना, सोच तथा प्रभाव की दृष्टि से इन कहानियों ने मुझे पाठकों के एक विशाल वर्ग से जोड़ा. आज भी लोग पूछते हैं 'सीमा' कहां है ? 'चीख' की नायिका का क्या हुआ ?

मेरी पहले की कहानियों में भावुकता तथा अपनी बात को 'जस्टीफाई' करने की बात होती थी. मैं स्वयं पात्र की स्थितियों के बारे में बताती थी, बाद में वही मुझे दोष नज़र आने लगा. लगा कहानी के भीतर से वह बात आनी चाहिए. लेखक को पार्श्व में रहना चाहिए. तटस्थ तथा मूक, साक्षी भाव से.

बीच के सात-आठ वर्ष मेरे एकदम लेखनशून्य रहे. इससे पूर्व कुछ सालों तक मैं 'कथाबिंब' से भी सहयोगी संपादिका के

रूप में जुड़ी रही. शुरू में कई कहानियां भी 'कथाबिंब' में छपी थीं. फिर विवाह हो गया. बच्चे और नौकरी. वही वक़्त था जब मुझे अध्ययन करना चाहिए था. स्वयं को लगातार परखना चाहिए था. लेकिन परिवार से मेरा जुड़ाव तथा लगाव मेरी प्राथमिकताओं को बदलता गया. तमाम तरह की समस्याओं ने मुझे लेखन से दूर कर दिया. एक बार कोई चीज़ हाथ से छूट जाये तो पुनः पकड़ने तथा साधने में वक़्त लग जाता है. मेरे साथ भी वही हुआ. जब दुबारा मैंने कलम थामी तो लगा, कहां से शुरू करूं और कैसे ? लेकिन धीरे-धीरे पकड़ बनी. इसका बहुत कुछ श्रेय कवि चंद्रशेखर साकल्ले को जाता है जिन्होंने कहा कि आप नियमित दो पन्ने लिखें पर लिखें ज़रूर. मैंने संग्रह दिया प्रकाशन के लिए. उसी संग्रह को तीन पुरस्कार मिले और वहीं से एक नयी शुरुआत हुई. इस बीच मैंने साहित्य के अंतर्जगत को, साहित्यकारों को समझा, देखा. मेरे समकालीनों के उपन्यास आ चुके हैं. मेरे शुभचिंतक मुझे प्रेरित करते हैं तो कुछ कटाक्ष भी. लेकिन जब तक मैं स्वयं को तैयार नहीं कर लेती तब तक कैसे लिखूं ? मुझे किसी से कोई स्पर्धा नहीं, न स्वयं को लेकर आत्महीनता. मैं अच्छा लिखूं यही मेरी कोशिश रहती है. समझौते मैं कर नहीं सकती और लेखन के लिए घरबार त्याग नहीं सकती. पर मन में लगातार टीस बनी रहती है कि मैं वह क्यों नहीं लिख पा रही हूं जो लिखना चाहिए. 'गूंज' में छपी लंबी कहानी को उपन्यास नाम देकर संपादक जी ने छाप दिया तो मुझे अटपटा तो लगा. मेरे पाठकों पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? पर उसकी इतनी अच्छी प्रतिक्रिया मुझे मिली कि वह मलाल जाता रहा.

कई बार ऐसे भी क्षण आते हैं जब मन विचलित हो जाता है कि मैं कहां हूं ? सच बेहद कड़वा होता है कि मेरे पास ऐसा कुछ भी तो नहीं है जो मुझे रातों-रात उठा दे. आज के माहौल में जो बातें फिट बैठती हैं उनमें मैं हर तरह से 'अनफिट' हूं. बस अपनी रचना का मुंह देखती रहती हूं कि वही मुझे नाम देगी, सम्मान देगी, स्थापित करेगी. जैसे मां-बाप अपनी संतान में अपनी खुशियां, अपना सुख, अपना अस्तित्व तलाशते हैं वैसे ही मैं भी अपनी रचनाओं में अपना सर्वस्व देखती हूं. कई बार ऐसा हुआ भी है कि जिनसे कोई पहचान नहीं, पत्र-व्यवहार नहीं वे निष्पक्ष भाव से कहानियों पर लिखते रहते हैं. यही एक आस्था और विश्वास मेरे पास है.

मुझे बहुत बड़े पुरस्कार नहीं मिले पर जो मिले मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज़रूर व्यक्त करना चाहूंगी. सच मायने में 'शहर में अकेली लड़की' को जब अखिल भारतीय 'समर स्मृति पुरस्कार' मिला तो वह मेरे लिए बहुत मूल्यवान था, है और रहेगा भी क्योंकि श्रीमती मेहरुन्निसा परवेज़ ने अपने बेटे की स्मृति में जिन पवित्र भावनाओं को लेकर यह पुरस्कार दिया था वह अपने अपने आप में बेहद-बेहद महत्वपूर्ण है. मंच पर बोलते हुए वे फफककर रो पड़ी थीं. पूरा हाल आंसुओं, दुःख और आत्मीयता की तरलता में डूब गया था. मेरी आंखों से आंसू थम नहीं रहे थे. काशीबाई मेहता, रत्नभारती पुरस्कार तथा शब्दशिल्पी सम्मान भी मेरे लिए बहुत मायने रखते हैं क्योंकि इनके पीछे देने वालों की विशुद्धतम भावनाएं मेरे लेखन के साथ जुड़ी हुई थीं.

कॉलेज की नौकरी करते हुए एक प्रतिबद्धता का भाव अपने आपसे भी जुड़ा रहता है. जिम्मेदारी का एहसास भी और आर्थिक सुरक्षा तो एक लेखक होने के साथ होती ही है. साहित्य से धनोपार्जन की उम्मीद नहीं की जा सकती और लेखक की दयनीयता मुझे स्वीकार नहीं. हर हाल में आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना चाहिए. यद्यपि नौकरी में आपका बहुत समय जाता है. नौकरी की प्राथमिकताएं बांधे रहती हैं इसलिए लेखकीय कार्य कई बार धीमे पड़ जाते हैं. यह मेरे पति डॉ. शिरीष का आत्मविश्वास है मुझको लेकर कि वे सारी चुनौतियों के बीच लेखन की विशिष्टता का पक्ष लेते हैं और मुझे प्रतिपल लिखने के लिए उत्प्रेरित करते रहते हैं.

इधर मैंने कुछ पुस्तकों की समीक्षाएं लिखीं तो कुछ लोगों ने नाराज़गी भी जताई तथा कुछ ने उपहास भी किया. मुझे लगता है कि यह सब लेखन के ही हिस्से हैं. निश्चित ही अपना मूल लेखन प्रभावित होता है लेकिन किसी का साक्षात्कार लेना, किसी पुस्तक की समीक्षा लिख देना या कोई पुस्तक संपादित कर लेना मुझे रुचिकर लगता है. भाषा तथा शिल्प को लेकर मैं बार-बार सोचती हूं. मुझे लगता है गढ़ना, सुनना, तराशना और फिर स्वयं को ठीक लगना, अपने ही आलोचक की कसौटी पर खरी उतरना यही रचना यात्रा की निरंतरता है.

इन दिनों मैं एक उपन्यास पर काम कर रही हूं. मेरे स्वर्गीय ससुर की इच्छा थी कि मैं बहुत लिखूं. वे समाचार-पत्र या पत्रिका दिखाकर कहते थे कि 'तुम्हें ऐसा लिखना है, यह बनना है.' उनका सपना क्या पूरा हो सकेगा ? यही बात मैं बार-बार सोचती हूं. इन दिनों मैं एक ऐसी पुस्तक का संपादन कर रही हूं जो मुझे बहुत पहले करना चाहिए था. लेकिन लगता है कि समय आने पर ही कुछ काम होते हैं. बातें तथा घटनाएं इतनी हैं कि यदि उन्हें उठाऊंगी तो बहुत सारे लोगों के मन को चोट पहुंचेगी. वे सब अपनी सफ़ाई के लिए तमाम तर्क रखेंगे. जीवन में यही सोचकर तसल्ली कर लेती हूं कि अपने से भी ज्यादा तकलीफ़ें जब अपने उठाते हैं तो उनके सामने मेरा संघर्ष या तकलीफ़ बहुत छोटी हो जाती है. साथ हूं मैं सदैव उनके जो दुःखों तथा हताशाओं से घिरे होते हैं और उनकी पीड़ा को अपने लेखन में व्यक्त कर सकूं यही मेरे लेखन की सार्थकता होगी.

एफ-९५/२२, तुलसी नगर, भोपाल - ४६२ ००३.

संतुष्टि है कि मेरे शब्द व्यर्थ नहीं गये !

- डॉ. किशोर काबरा

(प्रसिद्ध रचनाकार डॉ. किशोर काबरा से सुश्री मधु प्रसाद की 'कथाबिंब' के लिए विशेष भेंट वार्ता)

डॉ. किशोर काबरा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' शीर्षक अपने ग्रंथ में डॉ. घनश्याम अग्रवाल ने लिखा है, "जिसने भी मिट्टी की गंध को मूल से प्राप्त कर फुनगी तक पहुंचाया है वही काल के गाल पर तिल की तरह बच पाया है. जिसने भी संघर्षों की चुनौती को झेला है उसने अमिट के सीने पर अपनी वाणी को आंक दिया है." डॉ. किशोर काबरा की जीवन-यात्रा एवं काव्य-चेतना पर ये शब्द शत-प्रतिशत चरितार्थ होते हैं. डॉ. काबरा संघर्षों की भट्ठी में तपकर कुंदन की तरह निखरे हैं. यूं तो डॉ. काबरा से मैं कई वर्षों से परिचित हूं, आपके साहित्य में कुछ अवगाहन भी किया है मैंने, पर इतने निकट के आपके कवि रूप और व्यक्ति रूप को जानने का सारस्वत सुख साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त हुआ है.

● आप शाश्वत-संवेदना एवं युग-चेतना के चतुर चितेरे हैं. आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बहु-आयामी एवं विराट रूप हैं. आज मैं दर्शन एवं चिंतन के प्रज्ञा-पुरुष के अंदर छिपे 'व्यक्ति किशोर काबरा एवं कवि किशोर काबरा' से परिचित होने के लिए उपस्थित हुई हूं. कृपया पहले व्यक्ति काबरा से परिचय करवाते हुए अपने घर, आंगन एवं परिवार से हम सबको मिलवायें.

मधुजी मैंने अपनी 'व्यक्ति आकृति' एवं 'कवि प्रकृति' को अलग होने नहीं दिया है. मुझमें दोनों ही घुल-मिल गये हैं. मिसरी को उसकी मिठास से, दूध को उसकी धवलता से कैसे अलग करेगी ? मैं कवि पैदा हुआ हूं और ऋषि की तरह मरना चाहता हूं. मेरे पिता श्री प्रभुलालजी कवि थे, जुझारू थे. वे आस्थावान, सच्चे और ईमानदार इन्सान थे. वे क्रोधी भी थे, जलते हुए लावे की तरह. मेरी मां सरजू बाई एक भोली गवरू, भीरू, शांत चित्त और आशीर्वाद की मुद्रा में रहने वाली निरीह महिला थीं. माता-पिता के सभी रंग कमोबेश मुझमें आ गये. गरीबी मिली उत्तराधिकार में, सो अलग. पिता से मिली कर्मठता और कविता तथा मां से मिली सरलता और सात्विकता मेरे व्यक्तित्व की अंदर-बाहर की रेखाएं हैं.

मेरा जन्म मंदसौर में मालवा की सोंधी माटी में हुआ. माहेश्वरी जाति में पैदा हुआ, इसलिए सौजन्यपूर्ण संतुलित व्यवहारिकता मुझमें है. हां, भीतर से मैं ब्राह्मण हूं जो ऋषि बनने की तैयारी कर रहा है. जीवन भर संघर्ष करता रहा, इसलिए क्षत्रिय भी हूं. अर्थ के मामले में अभावग्रस्त रहा, नौकरी भी की, इसलिए कुछ प्रतिशत शूद्र भी हूं, पर नौकरी छोड़ी भी है और कविता को स्वीकार किया है. मैं चारों वर्णों से ऊपर उठकर, चारों आश्रमों से ऊपर उठकर महा विश्राम कर सकूं - यही इच्छा है. मैंने अपने एक दोहे में कहा भी है :

दो इच्छाएं शेष हैं, बाकी सबसे त्राण ।
मेरे शब्द चिरायु हों, मुझे मिले विश्राम ।।

● धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इस यात्रा का आरंभ मालवा की मिट्टी से हुआ है. अब यह बतायें कि आपके अंदर के कवि का जन्म कब और कैसे हुआ ? आपकी प्रथम कविता ?

जैसा मैंने कहा, मधुजी, मैं जन्मजात कवि हूं. मैंने कविता करना सीखा नहीं है. मेरे अंतःकरण में एक ध्वनि गूंजती रहती थी. उस समय पता नहीं लगता था कि वह क्या है ? बस, सहज कविता बन जाती थी. लय और तुक मेरी मदद करते थे. जब मैं मात्र ११ वर्ष का था, तब मेरी पहली कविता छपी थी. लिखना तब से शुरू हो गया था. उस समय की काव्य-पंक्तियां याद आती हैं :

'ग़म के खारे सागर में सब जीवन के जलयान वह गये.
मौन रहे हम कब तक, अब तो धरती पर हैवान रह गये'.

या फिर *'सबको सुखी बनाने वाले, जीवन में रस भरने वाले,*
स्वागत है ऋतुराज तुम्हारा, तुम पर तन-मन अर्पण सारा'.

मतलब यह कि प्रारंभ से ही दुःख-सुख दोनों मेरी कविता के उद्दीपक रहे हैं.

● डॉ. साहब, बाल्यकाल जीवन का निर्माण काल होता है. बाल्यकाल की कोई स्मरणीय घटना बतायें जिसे याद करके आज भी आप रोमांचित हो उठते हों.

मेरा बचपन पीड़ाओं की राम कहानी है. दुर्बल, कमज़ोर डेढ़ पसली का मैं, आर्थिक विपन्नता में डूबा परिवार, उपेक्षा करता हुआ परिवेश - इन सबने मुझे अंतर्मुखी बना दिया. जब मैं तीसरी कक्षा में था, तब एक लड़के से मेरी दोस्ती हुई, बल्कि उस लड़के ने मुझसे दोस्ती की. निर्मल निश्छल हृदय, चेहरे पर मंद-मंद मुस्कान, ऊंचा ललाट, चमकती आंखें. हंसे तो सब दांत मोती की माला बना जायें. उसके साथ बिताये क्षण आज भी रोमांचित करते हैं. घंटों चौंच में चौंच डाले बातें करते रहते थे. दूसरे दोस्त हमसे जलते, हमें भड़काते, बीच में दरार डालते. पर हम थे कि और गहरे दोस्त होते जाते. रामानुजदास मंत्री है उसका नाम, जो अंग्रेज़ी प्राध्यापक पद से अब निवृत्त हुआ. हम दोनों की रागात्मकता इस हद तक पहुंच गयी थी कि लोग उसको काबरा और मुझे मंत्री समझते थे. अगर रामानुज जैसा दोस्त मुझे नहीं मिलता तो मेरे कड़वे जीवन में मिठास नहीं आती.

● डॉ. साहब, आपकी मित्रता ने आपके जीवन में मिठास भर दी है और आपकी यह स्नेहपूर्ण स्मरणांजलि इस वार्तालाप में मिठास भर रही है. अब यह बतायें कि आपकी प्रेरणा का स्रोत क्या है ? आपके प्रारंभिक वर्ष गांव की मिट्टी की महक लिये हुए हैं. उस मिट्टी में कहां से आप में सृजनात्मकता के अंकुर फूटे ? कृपया बतायें.

मधुजी, जैसा मैंने बताया मेरा जन्म तो मंदसौर में हुआ था. पारिवारिक अलगाव के कारण पिताजी दादाजी से अलग होकर पास के गांव - बड़वन और झरकन में रहने लगे. गांव क्या थे कुछ टपरियों और झोपड़ियों के सांस लेते समूह थे. मैं कक्षा २ तक वहीं पढ़ा था. इस बीच मुझे ताऊजी के यहां गोद भी रखा गया पर उनकी कठोर उपेक्षा ने मेरे तन-मन को वितृष्णा से भर दिया. मेरे पिताजी मुझे पुनः गांव ले आये. फसलों से लदे खेत, धान उलीचते खलिहान, सद्य-सद्य तान छेड़ते घने पेड़-पौधे, मासूमियत में नहाये, निर्दोष चेहरे, खेल भी खेलते तो ध्वन्यात्मक, लयात्मक या उच्चारण से जुड़े. संभवतः कविता वहीं आंख मूंद कर हवा-पानी की प्रतीक्षा कर रही थी. फिर तो मेरा पूरा परिवार मंदसौर आ गया. मैं इसलिए पढ़ पाया क्योंकि परिवार में मेरा और कोई उपयोग नहीं था... (हंसकर) और निरुपयोगी व्यक्ति कविता न करे तो और क्या करे ?

● डॉ. साहब, कविता सही पात्र तलाश कर रही थी. आप मिले तो वह धन्य हुई है. निरुपयोगिता ने आपको कवि नहीं बनाया, कविता ने ही आपको ढूंढ़ा है. डॉ. साहब आप कई शिक्षण संस्थाओं से जुड़े रहे हैं. आपके कवि और शिक्षक की इस यात्रा में शिक्षक कब पीछे रह गया और कवि आगे बढ़ गया ? कृपया अपने शिक्षण संबंधी अनुभव बतायें.

यह आपने अच्छा पूछा है मधुजी. इंटरमीडिएट के बाद पिताजी ने साफ़ शब्दों में कह दिया 'अपनी रोटी ख़ुद कमाओ अब हम नहीं पढ़ा सकते'. मेरे सब दोस्त आगे की पढ़ाई के लिए कॉलेजों में चले गये और मैं नौकरी तलाशने लगा. कई नौकरियां कीं - पहले कंबल केंद्र में 'सुपरवाइज़र', फिर मध्य प्रदेश शिक्षा विभाग में शिक्षक. उस समय मैंने संकल्प किया था कि प्रतिवर्ष एक परीक्षा दूंगा, सो समय जाते साहित्यरत्न, एम. ए., बी. एड., पी-एच.डी. हो गया. यह विद्यार्थी की यात्रा थी. शिक्षक के रूप में केंद्रीय विद्यालय के उपाचार्य के पद तक पहुंचा. पी-एच. डी. करते ही संकल्प किया कि प्रतिवर्ष एक ग्रंथ प्रकाशित हो, सो वह आज तक चल रहा है. बल्कि दो ग्रंथ प्रतिवर्ष का अनुपात हो गया है. १०० पुस्तकें हो गयीं, फिर जब लगा कि नौकरी कविता पर हावी होने लगी तो मैंने उपाचार्य पद से त्यागपत्र देकर हमेशा के लिए अपना संबंध कविता से जोड़ लिया. आज मैं कह सकता हूं कि यदि नौकरी नहीं छोड़ता तो गली-मोहल्ले का कवि बनकर रह जाता. बड़ी प्राप्ति के लिए बड़ा त्याग भी करना पड़ता है. नौकरी को हारना ही था. कविता को जीतना ही था.

● आपने सच ही कहा डॉ. साहब, कवि एवं कविता ही इस संघर्ष में विजयी रहे. आपके लिए जीवन बेहद संघर्ष लेकर प्रस्तुत होता रहा है. आप निरंतर योद्धा की भांति जुटे ही रहे. अंत में संघर्ष ही हारा है आप से. उस सारी कड़ुवाहट को आपने नीलकंठ की भांति सहा और भोगा फिर भी सत्यम, शिवम् और सुंदरम वाले कालजयी और आनंदमयी साहित्य की रचना की है. क्या माधुर्य के लिए विषपान आवश्यक है ?

मधुजी, मैंने आपसे पहले कहा है कि मेरे जीवन में यदि कटुता, उपेक्षा, विपन्नता, अभाव, अपमान आदि न आते तो मैं विद्रोही तो बन जाता, कवि नहीं. कवि तो शंकर है, जो हलाहल पीता है और जटाजूट में से गंगा की धारा देता है समाज को. मैंने भी हलाहल पिया है और उसे आक्रोश की गर्मी से पचाया है. इससे मैं स्वस्थ हो गया और भीतर रखा हुआ अमृत-कलश बाहर आ गया. मैंने सूई की अगली नोक बनना पसंद नहीं किया जो घाव ही घाव किया करती है. मैं तो सूई की पिछली नोक बना, जो मरहम से घाव सिया करती है. यदि स्वयं के लिए माधुर्य चाहिए, यदि समाज के लिए माधुर्य चाहिए तो विषपान करना ही पड़ेगा. और आप ही बताइए, कवि के सिवाय विषपान और कौन करेगा? जिसके पास कविता का अमृत है, वही तो विष पचा सकता है !

● विष से अमृत की यह यात्रा वाकई मार्मिक है. डॉ. साहब यह यात्रा आपको कब गुजरात ले आयी, यानी मालवा की मिट्टी की सोंधी सुगंध ने कब गुजरात की रंगभूमि का वरण किया ?

मैं ३३ वर्ष की उम्र में मालवा छोड़कर गुजरात की भूमि से जुड़ गया. १९६८ से आज तक यानी यहां भी ३४ वर्ष हो गये. पहले ३ का मुख उत्तरदायित्व की ओर था, अब ४ का मुख उत्तर-प्राप्ति की ओर है. मालवा की मिट्टी अब भी मुझको बुलाती है. वह अफ़ीम के पुष्पों की मदिर गंध, यदा-कदा वहां हो आता हूं और तनमन को तरोताज़ा करके लौट आता हूं.

● चलिए डॉ. साहब, मिट्टी से अब निर्माण की ओर चलते हैं. आपने साहित्य की लगभग हर विधा को अपनी लेखनी से समृद्ध किया है. आपको सबसे अधिक आनंद किस विधा के सृजन में प्राप्त हुआ है ?

मैंने छांदस, अछांदस, गीत, ग़ज़ल, प्रबंध - सब लिखे हैं. मैंने शोध से लेकर समीक्षा तक और काव्य कथा से लेकर लघुकथा तक सब लिखा है. मेरा मन प्रबंध काव्य में जितना रमा है, उतना अन्य विधा में नहीं. चूंकि मेरे खंड काव्यों, महाकाव्यों में कविता की सभी शैलियां, सभी उप-विधाएं, सभी रीतियां और संधियां गुंथी हुई हैं, अतः अलग से उनका अभाव जैसा नहीं लगता. वैसे मैंने कविता की सभी उपविधाओं पर स्वतंत्र रूप से भी खूब लिखा है, पर स्वांतः सुखाय और लोकहिताय की तृप्ति तो प्रबंध-चेतना से ही मिली है.

● डॉ. साहब आपकी 'चंदन हो गया हूं मैं', 'मैं दर्पण हूं', 'ऋतुमती है प्यास' आदि में गीतों एवं ग़ज़लों की मधुरता, मादकता

एवं सरलता पोर-पोर को अभिमंत्रित-सा करती है. उन गीतों में युवा हृदय की धड़कन है, रसवंती हवाओं की ताज़गी है, रागात्मकता है. आपकी इस चिर नूतनता का क्या रहस्य है ? ज़रा खुल कर बतायें.

मधुजी, आपने ऐसी लोक कथाएं सुनी होंगी, जिसमें किसी सरोवर में डुबकी लगा कर जीर्ण-शीर्ण लोग जवान बन जाते हैं. ब्रह्म राक्षस, ब्रह्मऋषि, कोढी कामदेव बन जाते हैं. मैं कविता में डूब कर लिखता हूं. जिस पात्र का चित्रण करता हूं या जिस पाठक के लिए लिखता हूं, उसमें स्वयं को डुबोकर लिखता हूं. अतः हमेशा नया हो जाता हूं. गीतों और ग़ज़लों में चंदनी सुवास और धड़कते दिलों की लय होती है. वैसे मैं नंद किशोर हूं. नंद बूढ़ा हो भी जाये, किशोर कभी बूढ़ा नहीं हो पायेगा. 'चिर नूतनता' के कुछ रहस्य और भी हैं, पर सब तो बताये नहीं जा सकते. (हंसते हुए).

● आपने अब 'नंद किशोर' की बात की है तो लगे हाथ यह भी बता दीजिए कि आपके 'नंद किशोर' से सिर्फ़ 'किशोर' रह जाने के पीछे क्या रहस्य है. वैसे तो आप 'किशोरों' के भी किशोर हैं.

मधुजी, पिताजी ने मेरा नाम नंद किशोर रखा था. कविता ने अपना नाम चुन लिया. पहले मैं अपना नाम नंदकिशोर प्रभुलाल काबरा 'किंशोर', लिखता था. फिर जैसे वृक्ष के पत्ते झड़ते हैं, वैसे मेरे नाम के सभी उपादान बिखरते रहे. अब नाम भी किशोर, उपनाम भी किशोर, स्वभाव भी किशोर और महाभाव भी किशोर. मैंने अपने एक दोहे में कहा है :

मन दर्पण में झांक कर देख अरे, चित चोर।
तू भी नंद किशोर है, मैं भी नंद किशोर ॥

● डॉ. साहब, आपकी नंद किशोर से किशोर रह जाने की यात्रा पूरी हुई. अब यह बतायें कि किशोर की काव्य-यात्रा के सहयात्री कौन रहे, यानी डॉ. किशोर काबरा के जीवन में किन-किन साहित्यकारों ने अमिट प्रभाव डाला ?

मुझे अभावों ने ज्यादा सिखाया है मधु जी. विपत्तियों ने ज्यादा साथ दिया मेरा, इसलिए सच्चे साथी, सहयात्री तो मेरे आंसू हैं. मेरे मौन क्रंदन हैं. हां, श्री मदनलालजी जोशी जैसे गुरूजनों, श्री नागेश जी मेहता जैसे गुणीजनों और रामानुजदास मंत्री जैसे मेरे मित्रों ने हमेशा मुझे आगे बढ़ने की प्रेरणा दी. डॉ. अंबा शंकर नागर जैसे पथ प्रदर्शकों ने भी मुझे सहारा दिया है. आचार्य रजनीश जी भी मेरे प्रेरणा-स्रोत रहे. मुझे अच्छे शिक्षक मिले हैं, अच्छे मित्र मिले हैं, अच्छे शिष्य मिले हैं. जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, दिनकर, बच्चन आदि कवि मेरे आदर्श रहे हैं. फिर समय सबका गुरू है, सब कुछ सिखा देता है. साथ चलता भी है और साथ रुकता भी है. मैं भाग्यशाली हूं. अच्छे परिजन, अच्छे प्रियजन मिले हैं मुझे.

● 'परिताप के पांच क्षण' अद्‌भुत खंड काव्य है. अंबा की व्यथा को आपने सचमुच नारी मन से देखा, परखा और भोगा है. इसलिए नारी कहीं न कहीं आपको प्रेरित करती रही है. इस अनुभूति का स्रोत कोई नारी है या नारी मन ? कृपया इस पर प्रकाश डालें.

मधुजी, मेरे सभी प्रबंध-काव्यों में नारी पात्र केंद्र में हैं. यह सही बात है, पर केवल उनकी ही मनोव्यथा या मनोराज्य का चित्रण करना मेरा लक्ष्य नहीं रहा है. 'उत्तर रामायण' में सीता के उदात्त चरित्र और निष्कलंक व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि में राम के अनन्य विश्वास को मैंने चित्रित किया है. सीता निष्कासन ही दोनों के व्यक्तित्व की धवल रेखाओं को एक आकृति प्रदान करता है. 'उत्तर महाभारत' के पांचों पांडव एवं द्रौपदी मेरे मित्र समान हैं. मैंने द्रौपदी को 'काम' का प्रतीक बनाया है जो हर व्यक्ति के मूलाधार में रहता है. इसी तरह 'धनुषभंग' और 'नरो वा कुंजरो वा' में क्रमशः सीता और द्रौपदी फिर से नये रूप ग्रहण करके उपस्थित हो जाती हैं. प्रत्येक प्रबंध काव्य कथ्य एवं शिल्प, प्रेरणा एवं परिणति की दृष्टि से स्वतंत्र, पर सब में पूर्वदीप्ति शैली है. संभवतः अपने ढंग के ये अद्वितीय ग्रंथ हैं. हिंदी जगत् में इनके कारण मुझे यश भी खूब मिला है और संतोष भी.

● आपने बहुत लिखा - बहुतों पर लिखा, पर जब आप पर शोध प्रबंध एवं समीक्षात्मक पुस्तकें लिखी गयीं तो वह परम संतोष एवं उपलब्धि का क्षण होगा. उन क्षणों का आनंद एवं रोमांच कैसा रहा ? कुछ बतायें.

मैंने शोध-कार्य किया, मधुजी, वहां तक तो ठीक है पर मुझ पर भी शोध कार्य होंगे - यह मेरे लिए कल्पनातीत था. पर शब्द का बीज व्यर्थ कभी नहीं जाता. वह देर से सही, अंकुरित होता है, पुष्पित, फलित होता है. सबसे पहले एम. फिल. कार्य, चैन्नई में "नरो वा कुंजरो वा : परंपरा और युगबोध विषयक" हुआ. बहुत अच्छा कार्य किया सुश्री वैजयंती ने. फिर तो मराठवाड़ा वि. वि. से एक पी-एच. डी. और हुई मेरे प्रबंध काव्यों के पात्रों की मनोवैज्ञानिकता को लेकर. अब तो सात शोध-कार्य हो गये हैं. पांच और हो रहे हैं. कई के शोध-प्रबंध छप भी गये हैं. इन क्षणों का आनंद एवं रोमांच इसी संतुष्टि में डूबा हुआ है कि मेरे शब्द व्यर्थ नहीं गये. उनका साधारणीकरण हो रहा है और लोक स्वीकृति मिल रही है - यही मेरे लिए रोमांच है, यही आनंद है.

● सच में अपने ऊपर इतना लिखा पाकर आत्मा तक तृप्त हो ही जाती है. अच्छा, डॉ. साहब अब कुछ सम्मान एवं पुरस्कारों की बात करें. आप जैसे क़लम के सिपाही का अनेक बार सम्मान हुआ है. मानद उपाधियां भी मिली हैं. प्रथम पुरस्कार की क्या अनुभूति रही ?

मधुजी, पुरस्कार तो मुझे बचपन से ही मिले हैं. अतः कोई विशेष उत्तेजना बाद में कभी नहीं हुई. पुरस्कार या सम्मान के अवसर पर मिलने वाली राशि मुझे उतना आनंदित नहीं करती,

जितना आनंदित पुरस्कार देने वाले व्यक्तियों की आंखों से बरसने वाली अहो भाव की निर्मल गंगाजली. पुरस्कार और सम्मान मेरी शक्ति तो बढ़ाते हैं, पर मुझे शक्ति का दुरुपयोग नहीं करने देते. ये प्रभु की असीम कृपा है मुझ पर.

● **आज के इस कठिन असाहित्यिक दौर में आपने वर्षों 'भाषा-सेतु' पत्रिका का संपादन किया है. पत्रकारिता का कैसा अनुभव रहा ?**

'हिंदी साहित्य परिषद' की स्थापना के साथ ही त्रैमासिक पत्रिका के प्रकाशन की परिकल्पना सबके मन में थी. मैंने 'भाषा सेतु' पत्रिका का संपादन का दायित्व अपने ऊपर लिया, क्योंकि मुझे अपने ऊपर विश्वास था. १८-१८ घंटे काम करना पड़ा है. देश ही नहीं, विदेशांतर में 'भाषा-सेतु' की स्तरीयता एवं गरिमा को लोग सराहने लगे. इससे और सब लाभ हुए, पर मेरी कविता को नुकसान हुआ. उन छह वर्षों में कोई बड़ा ग्रंथ भी नहीं आ पाया. 'उत्तर भागवत' महाकाव्य का कार्य बीच में ही रुक गया. आखिर पत्रिका के संपादन कार्य से मुक्ति लेनी पड़ी. इससे एक बात सीखी कि सृजन में संपादन अवरोध करता ही है.

● **एक ओर आपने पद्य की सारी विधाएं समेटी हैं - मुक्तक से महाकाव्य तक. दूसरी ओर गद्य की समीक्षा, निबंध, शोध प्रबंध, बाल-साहित्य, पाठ्यक्रम की पुस्तकें आदि-आदि. यह बतायें कि जीवन आपके लिए किस रूप में अधिक सार्थक एवं सजीव रहा है - गीतात्मक, चिंतनात्मक, कथात्मक या चित्रात्मक ? आपने शब्द-चित्र आदि भी बनाये हैं. कैसा रहा जीवन आपके लिए ?**

मधु जी, मैंने जीवन को समग्रता में जिया है, इसीलिए लेखन की सभी विधाएं आ गयी हैं. मैं प्रमुख रूप से कवि हूं - प्रबंध चेतना वाला कवि और गौण रूप से गीतकार, ग़ज़लकार, मुक्तककार, सतसईकार. तीसरे स्तर पर मेरा समीक्षक, शोधवेत्ता और लघुकथाकार का रूप है. चौथे स्तर पर मेरा संपादक और अनुवादक वाला रूप है. पांचवे स्तर पर मेरा बाल साहित्य और शब्द चित्र वाला. छठे स्तर पर पाठ्य पुस्तकों का लेखन, संपादन आदि है. अब आप समझ गयी होंगी कि कितना संतुलन साधना पड़ता है सर्जनात्मक जीवन में. गौण को भी निबाहना पड़ता है और महत्वपूर्ण को भी साधना पड़ता है. मैंने लिखा भी है -

गीत लिखे, ग़ज़लें लिखीं, लिखे छंद-स्वच्छंद ।
जब मैंने ख़ुद को लिखा, क़लम हो गयी बंद ।।

● **डॉ. साहब, आपकी प्रारंभिक रचनाओं में सौंदर्य-चेतना झलकती है, वहीं बाद की रचनाओं में दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिंतन. अब यह बतायें कि इसके पीछे आपके जीवन का कौन-सा दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है ?**

मधुजी, यह तो बीज और फल वाला न्याय है. आरंभ तो सब कवियों का सौंदर्य-चेतना से ही होता है. सत्य, शिव और सुंदर में से कवि सुंदर से प्रारंभ करके सत्य तक पहुंचता है. सौंदर्य-पूर्ण सत्य ही शिवत्व के शिखर तक पहुंचता है. तीनों का समन्वय ही कवि की पूर्णता है. 'तितली के पंख' से 'उत्तर भागवत' तक मेरी सृजन-यात्रा शब्द से निःशब्द होने की ही यात्रा है. अभी वैखरी और मध्यमा है. संभवतः कल परा और पश्यंती भी आये. दर्शन एवं अध्यात्म को तो आना ही है.

● **यह सही है कि दर्शन एवं अध्यात्म कविता के अंतिम छोर हैं लेकिन वहां तक कोई कोई ही पहुंच पाते हैं. यूं जीवन बड़ा कठिन है जीना, फिर भी मानव इससे ऊबा नहीं है. उसमें हर पल जिजीविषा रही है. आप अगले जन्म में फिर डॉ. किशोर काबरा बनना चाहेंगे या कुछ और ?**

मधुजी, कम-से-कम इस जन्म का तो ठौर-ठिकाना सही कर लूं. इस तरह कर लूं कि अगला जन्म लेना ही न पड़े. पर नियति मेरे हाथ में नहीं है. उसका विधान मेरे हाथ में नहीं है. संभवतः फिर जन्म लेना ही पड़े. उस समय मैं 'नंद किशोर' से यात्रा प्रारंभ न करके 'किशोरानंद' से शुरू करूंगा. आखिर मुझे कविता के माध्यम से भी परमात्मा तत्व को पाना है, उससे कम में काम नहीं चलेगा. यदि इस जन्म में मौन सध गया तो अगले जन्म में वह गहरा हो जायेगा, यदि इस जन्म में बोलना-लिखना बाकी है, तो उसे अगले जन्म में पूरा करना ही होगा. लेकिन करना है तो कविता के माध्यम से ही. कविता मेरा स्वभाव है, महाभाव के पहले मैं उससे मुक्त कैसे हो सकूंगा ? मेरी काव्य साधना तब तक चलती रहेगी, जब तक पूर्ण विराम न आ जाये. वैसे आजकल मैं 'उत्तर भागवत' लिख रहा हूं. इसमें श्रीकृष्ण के उदात्त चरित्र को दर्शाते हुए द्वापर युग को आज के संदर्भ में प्रस्तुत कर रहा हूं.

● **आज के युवा साहित्यकारों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे ? वैसे तो डॉ.साहब, आपका संपूर्ण जीवन ही संदेश है - संघर्षों से न हारने का - फिर भी चाहती हूं, आप कुछ हम सबके लिए कहें.**

मधुजी, मैंने नवोदित कवियों के लिए एक प्रारंभिक संविधान बनाया है जिसके कुछ सूत्र हैं - जैसे क्या कविता लिखना आपके लिए हृदय की धड़कन जितना अनिवार्य कार्य है ? क्या कविता को आप यश और अर्थ की बजाय आत्मानंद प्रदान करने वाली पूजा मानते हैं ? छंद, लय, मात्रा, यति, गति की जानकारी एवं अछांदस की पहचान है आपको ? क्या आपके लिए कविता लिखना फैशन नहीं है - पूजा है - या उपासना है ? क्या कविता आपके लिए स्वयं को स्वयं में देखकर, स्वयं से स्वयं को अलग करने का योग है ? ये सब हो तो कविता अवश्य करें. कविता सरस्वती की आत्मा है उसके उपासक बनें.

● **डॉ. साहब, आपने जीवन और जगत के प्रति अपने विचारों से अवगत कराया. आपकी जगन्नियंता के प्रति असीम आस्था एवं विश्वास का मूल क्या है ?**

मैं जीवन और जगत से जगन्नीनयंता को अलग नहीं कर सकता. तीनों एक दूसरे से घुले मिले हैं. चूंकि जीवन को मैंने

जगन्नियंता का वरदान माना है और जगत को उसकी कृपा का प्रसाद तो इन तीनों के प्रति मेरी आस्था होनी ही चाहिए. मैं आसन, प्राणायाम ध्यान करता हूं. मैं प्राकृतिक चिकित्सा और योग में विश्वास रखता हूं. मेरा खान-पान और जीवन क्रम संतुलित है. ये सब मेरे और उसके बीच एक सरल रेखा ही खींचते हैं. मेरी सब वक्र रेखाएं समय और साधना ने पोंछ दी हैं. श्रद्धा और विश्वास को इससे अधिक और क्या चाहिए ?

● श्रद्धा और विश्वास जीवन को जीवंत बनाते हैं. इनका जीवन में समावेश अनिवार्य भी है और सार्थक भी. जीवन और जगत् अबूझ पहेली है. कवि मन उसको नये नये रूपों में देखता रहा है. जीवन और जगत और उनके संबंधों को आप कोई नयी परिभाषा देना चाहेंगे ? एक वाक्य में समेटना चाहें तो क्या होगी ? चलते-चलते...

दो मुक्तकों में समेट रहा हूं मधुजी, जीवन को, जगत को, इन दोनों के संबंधों को और उनसे मुक्त होने की विधा को :

'विश्व के संबंध हैं शैवाल जैसे
चिपकते हर अंग पर, जंजाल जैसे ।
मूर्ख उनको झटकता है, उलझता है,
चतुर उनमें सरक जाते व्याल जैसे ।।'

'खेत श्रद्धा है, पसीने का उसे अमृत पिलाओ,
बीज है विश्वास, उसको खेत में जाकर जिलाओ ।
ज़िंदगी की क्यारियों में फूल, फल, पत्ते सभी हैं,
स्वयं खाओ, किंतु उसके पूर्व औरों को खिलाओ ।।'

● डॉ. काबरा जी, आपके सागर की तरह विशाल एवं गहरे व्यक्तित्व को यूं कुछ शब्दों में समेट लेना सहज नहीं है. फिर भी मैंने आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के कुछ पहलू छू भर लेने का यह एक छोटा-सा प्रयास किया है. आपके संपूर्ण सृजन को आत्मसात करने के लिए समय एवं धैर्य अनिवार्य है. आपकी सारस्वत साधना को समझने के लिए साधना करनी होगी. वह सुअवसर फिर कभी मुझे प्राप्त होगा ऐसा मुझे विश्वास है. आपने अपना अमूल्य समय मुझे दिया है, आभारी हूं.

अंत में कविवर पंत की इन पंक्तियों के साथ आपसे विदा लेती हूं-

'सुंदर हैं सुमन विहग सुंदर ।
मानव तुम सबसे सुंदरतम ।।'

प्रणाम !

प्रणाम मधुजी, अपने जीवन के इन पलों को आपके साथ बांटकर मुझे भी आत्मिक प्रसन्नता हुई है.

❋ डॉ. किशोर काबरा
१८२१, गुजरात हॉउसिंग सोसायटी, चांदखेड़ा,
अहमदाबाद - ३८२ ४२४

❋ मधु प्रसाद
२९, गोकुलधाम सोसायटी, कलोल-महेसाणा हाईवे,
चांदखेड़ा, अहमदाबाद - ३८२ ४२४

With Best Compliments from

THE MORARJEE GOCULDAS SPINNING & WEAVING CO. LTD.

Dr. Ambedkar Road, Parel, Mumbai - 400 012.
Tel. : 2413001 Fax : 24146909

पुस्तक समीक्षा

हमारे आस-पास की कहानियां ?

✍ राजेंद्र सिंह गहलौत

''बुलबुल तुम उड़ती क्यों नहीं ?'' (कहानी संग्रह): *प्रतिभू बनर्जी*
प्रकाशक - श्यामला प्रकाशन, कृषि उपज मंडी रोड, पेन्ड्रा, जिला बिलासपुर (छत्तीसगढ़) मूल्य : ७० रु.

वर्तमान समय के कहानीकारों में से कुछ तो वे हैं जो प्रतिष्ठित, स्थापित और चर्चित हैं और जिनकी रचनाएं उनके नाम से पहचानी जाती हैं तथा उसी के अनुरूप चर्चा में बनी रहती हैं. कुछ ऐसे रचनाकार भी हैं जिनकी कहानियों की विषय वस्तु विशेष विचारधारा की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं की उनकी विचारधारा के पोषण हेतु, उनकी मांग के अनुरूप होती हैं. सामान्यतः ऐसे कहानीकारों की कहानियां ही वर्तमान में चर्चित होती हैं तथा कहानीकार स्थापित. जबकि दूसरी ओर कुछ ऐसे कहानीकार भी हैं जो अपने आसपास के परिवेश से कहानी की विषयवस्तु चुनते हैं तथा उनकी कहानियों के कथ्य ने स्वयं उनको भी कहीं न कहीं से प्रभावित किया होता है जिसके कि फलस्वरूप उनकी अनुभूति में से कहानियों का सृजन होता है. वे शिल्प की बाजीगरी नहीं दिखाते बल्कि कहानी की प्रभावशाली प्रस्तुति हेतु सरल, सहज सर्वबोधगम्य शिल्प का सहारा लेकर कहानी की रचना करते हैं. ऐसे कहानीकारों में से बहुत से गुमनामी के अंधेरे में संघर्ष करते हुए साहित्य जगत में बिना अपनी कोई पहचान बनाये गुमनामी में ही खो जाते हैं. पर फिर भी ऐसे कहानीकार एवं उनकी कहानियों के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता है. प्रतिभू बनर्जी भी ऐसे ही कहानीकार हैं. उनकी कहानियां आसपास के परिवेश, आम व्यक्ति के मानसिक द्वंद, मनोवेग, संघर्ष तथा सांस्कृतिक एवं राजनैतिक प्रदूषण को भी रेखांकित करती हैं.

कहानीकार जन्मतः छत्तीसगढ़ (पेन्ड्रा) का है तथा उसका कार्यक्षेत्र मध्यप्रदेश है. अतः दोनों ही प्रांतों की संस्कृति, वहां की समस्याएं तथा सामाजिक स्थितियों का प्रभाव उनकी कहानियों में स्पष्ट परिलक्षित होता है. विशेष तौर पर दोनों ही प्रांतों में उनके आसपास के परिवेश की निम्न एवं मध्यम वर्ग की महिलाओं की स्थिति, उनके शोषण, उनके संघर्ष एवं उनकी अदम्य जिजीविषा के चित्र उनकी कहानियों में बड़े ही संवेदनशील एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ प्रस्तुत हुए हैं. 'कामिनी', 'जिजीविषा', 'फिर एक बार बांझ', 'पतिता', 'प्रवासिनी' आदि कहानियां इस बात की गवाह हैं.

छत्तीसगढ़ के मजदूरों की प्रवासी प्रवृत्ति पूरे देश के लिए एक चिंतनीय विषय है. अपने प्रांत में रोजी-रोटी न मिल पाने, एकफसली कृषि, आदि कारणों से कृषि कार्य के महीनों को छोड़कर शेष पूरे वर्ष छत्तीसगढ़ के कृषक मजदूर, छोटे भूस्वामी कृषक को सपरिवार अपनी रोजी-रोटी कमाने देश के दूर-सुदूर प्रांतों में मजदूरी करने निकलना पड़ता है. काश्मीर से कन्याकुमारी तक कहीं भी ये छत्तीसगढ़ी मजदूरी करने जा सकते हैं, जहां पर भी इन्हें अपने परिवार के भरण पोषण के लिए दो रोटियां मिल सकें या फिर यह कहना चाहिए कि जहां भी "लेबर सप्लायर" के ठेकेदार इन्हें रोजी-रोटी का प्रलोभन देकर ले जायें. इनका भूखा पेट घर से निकल पड़ने के लिए तत्पर है. कहानीकार ने अपनी कहानी 'प्रवासिनी' में इसी तरह की एक महिला मजदूर के प्रवास के दौरान पुलिस के एक कांस्टेबिल द्वारा देह शोषण की कहानी के साथ ही प्रवासी मजदूर की दयनीय दशा, बिचौलिये ठेकेदार की भूमिका, भट्ठों में काम के दौरान अत्याचारों आदि का अत्यंत संवेदनशील मार्मिक, एवं मनोविश्लेषणात्मक चित्रण किया है. जबकि कहानी 'बुलबुल तुम उड़ती क्यों नहीं ?' की विषयवस्तु पुरानी होते हुए भी उसका प्रस्तुतीकरण नया है. कहानी में 'उड़ान' दो संदर्भों में प्रस्तुत हुई है. एक 'उड़ान' परों की फड़फड़ाहट 'बुलबुल' की अपने बेहतर कैरियर को पाने की तथा अच्छे डिवीजन में पास होने (यूनिवर्सिटी टॉपर) के बावजूद अच्छा कैरियर न पा सकने की हताशा है, तो दूसरी ओर एक और 'उड़ान' है. अच्छे वर की प्राप्ति की कामना की उड़ान जो सर्वगुण संपन्न कन्या 'बुलबुल', - सुंदरता, मेधावी एवं सुघड़ता के बावजूद अच्छे दहेज के अभाव में नहीं पा रही है और इन दोनों उड़ानों में सफलता न प्राप्त कर सकने वाली 'बुलबुल' की ओर हताशा से देखती परिजनों की वयोवृद्ध निगाहें चुपचाप अपने आपसे तथा इस दहेज लोभी समाज में भी मानो प्रश्न पूछ रही हैं कि 'बुलबुल तुम उड़ती क्यों नहीं ?' निःसंदेह शिल्प के दृष्टिकोण से 'बुलबुल तुम उड़ती क्यों नहीं ?' तथा 'कामिनी' कहानी पूरे संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानियां हैं जबकि उनका कथ्य काफी पुराना है तथा इस कथ्य पर पूर्व में भी कई कहानियां लिखी जा चुकी हैं. जबकि 'प्रवासिनी' तथा 'संक्रमण' कहानियों की विषयवस्तु में नवीनता है तथा समस्यामूलक कथ्य को इन कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है.

'अनुपम दान' तथा 'दूसरा मनु' कहानियों का कथ्य पौराणिक आख्यानों पर आधारित है जिसमें से कि 'दूसरा मनु' कहानी पौराणिक आख्यानों पर आधारित होते हुए भी वर्तमान का मूल्यांकन करते हुए भविष्य के विनाश की भयावह स्थितियों की कल्पना कर नयी सृष्टि की संरचना की एक आशावादी कल्पना प्रस्तुत करती है. 'वानप्रस्थ' वर्तमान राजनीति के स्वरूप का खाका खींचने का प्रयास करती है. जबकि 'संघर्ष' संघर्ष की कहानी न होकर पलायनवादिता एवं सभ्य कुलीन वर्ग की कायरता एवं अपने को दिलासा देते हुए फिर साहस की ओर लौट पड़ने के स्वयं से संघर्ष की कथा है. कहानी का परिवेश कहानीकार के कार्यक्षेत्र से जुड़ा होने की वज़ह से कहानी आपबीती का भ्रम पैदा करती है. 'दोस्त', 'देवता' एवं 'मृगनयनी' कहानियां यदि लघुकथा के कलेवर में होतीं तो शायद अधिक अच्छी लगतीं. 'प्यास अंतर की', 'उजड़ा कैनवास' तथा 'जिजीविषा' व्यक्ति के मानसिक द्वंद

की कहानियां हैं. जबकि 'मां, मनु कब आयेगी' मानसिक रूप से विकलांग बालक के मनोविश्लेषण को प्रस्तुत करने वाली कहानी है.

संग्रह की पौराणिक आख्यानों पर आधारित कहानियों को छोड़कर यदि शेष कहानियों पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो सभी कहानियों के कथ्य, कथानक, घटनाक्रम, परिवेश एवं पात्र कहानीकार के आसपास के ही हैं. रचनाकार का यथार्थ के पोषण का यह सहज, सरल एवं प्रभावशाली तरीका संभवतः पाठकों को सप्रयास यथार्थ के पोषण का, यथार्थ की बाजीगरीवाली कहानियों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली तो प्रतीत होगा ही साथ ही कहानियों में प्रयुक्त सरल भाषा एवं रोचक कथानक में कथ्य भी उन्हें बोधगम्य एवं अपने आसपास की समस्याओं से जुड़ा हुआ प्रतीत होगा. निःसंदेह कहानी के हर वर्ग के पाठकों को कहानी संग्रह की कहानियां न सिर्फ प्रभावित करेंगी बल्कि चिंतन के लिए भी प्रेरित करेंगी.

द्वारा सिंह प्रिंटिंग प्रेस,
पो.- बुढ़ार, जिला शहडोल (म. प्र.) - ४८४ ११०

नारी अनुभूतियों का मनोरम मीनाबाजार

✍ डॉ. विनय कुमार चौधरी

''जीने की दिशा''- (कविता-संग्रह) : *मौसमी मुखर्जी*
प्रकाशक- मुखर्जी प्रकाशन, हाटपाड़ा, पाकुड़ (झारखंड) ८१६१०७
मूल्य : ५५ रु.

सद्यः प्रकाशित काव्य कृति - 'जीने की दिशा' चौंसठ पृष्ठों में समाहित कुल इक्यानवे कविताओं का संकलन है. कवियित्री हैं - मौसमी मुखर्जी. वय के तीन दशकीय अनुभव प्राप्त करने के साथ-साथ श्रीमती मुखर्जी की कविताएं भी प्रौढ़ता को प्राप्त कर चुकी हैं.

'जीने की दिशा' संग्रह की कविताएं नारी-चेतना से प्रसूत और बंगाली संस्कृति तथा मैथिली परिवेश के बावजूद इन प्रभावों से शिल्प-स्तर पर सर्वथा अप्रभावित हैं क्योंकि इन सभी कारक तत्वों से मौसमी मुखर्जी को गीतिकाव्य लिखना चाहिए था लेकिन इक्यानवे में से मात्र तीन ग़ज़लों के सिवा शेष सभी मुक्त छंद की कविताएं हैं, उनमें भावगत तारतम्यता तो है पर लयात्मकता नहीं, लेकिन गीतिमयता की उपेक्षा का कहीं भान भी नहीं होता क्योंकि मौसमीजी आधुनिक बोध की कवयित्री हैं. अतः उनका शिल्पपक्ष भी तदनुरूप ही छंद मुक्त है. उदाहरणस्वरूप 'शहर का दर्द' -

हर शहर अकेला होता है / कभी-न-कभी /
और अकेलेपन का दर्द / वह जज्ब कर लेता है /
निःसंग आदमी की तरह / जिसके हृदय में उमड़ती है /
नदी-तट की व्यथा / जो साथ-साथ चलकर भी /
नहीं मिलती कभी / एक दूसरे से...

'जीने की दिशा' के अवलोकन से जो बात सर्वाधिक प्रमुखता से उजागर होती है, वह यह की संग्रह की प्रायः तमाम कविताएं लघुकाय हैं. क्षण-क्षण बदलती कविता-भूमि के कारण वे ऊबाऊ नहीं, आकर्षक बन सकी हैं. लघुकाय होना भाव और शिल्प की चुस्ती का प्रमाण है और कवि सिद्धि का परिणाम, उदाहरणस्वरूप - 'संकल्प' -

उग आते हैं वे / दूबों की तरह /
संघर्षों से गुज़रकर /

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि नारी-चेतना के कारण मौसमी मुखर्जी की कविताओं की विषय वस्तु प्रायः घर परिवार के दायरे से जुड़ी है. उदाहरणस्वरूप -

पूरे घर की परिक्रमा करती / पृथ्वी ही तो है औरत /
और सूर्य है पुरुष / जो औरत को सिर्फ नचा सकता है/
अपने ही इर्द-गिर्द /
और जला सकता है अपने ताप से ... (औरत)

जवान होती लड़की के / होते हैं सपने रंगीन /
सारा का सारा आकाश / दीख पड़ता है समंदर सा /
लहराता हुआ / जिसकी हर लहरों पर थिरक कर /
नाच उठता है उसका मन-मयूर और कुंआरी आकांक्षाएं/
फैला देती हैं अपने पंख... (जवान होती लड़की)

मां, मुझे भी देखने दो / संसृति की यह रोशनी /
मैं भी जान सकूं / आकाश कितना बड़ा है /
कैसे उड़ते हैं परिंदे / धरती की गोद में /
कैसे दुबके रहते हैं मृगछौने / कैसी लगती है /
फूलों पर नाचती तितलियां और स्कूल की राह पर
मेरी वे बहनें... (मुझे भी देखने दो आकाश)

बूढ़े होते पिता की / शुरू हो जाती है उपेक्षा /
जब वे तमाम जिम्मेदारियों से होकर मुक्त /
करने लगते हैं विश्राम /
नहीं रहते कमाने की मशीन,... (बूढ़े होते पिता)

व्यक्ति और परिवार की सीमा में सिमटी इन कविताओं में राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे नगण्य हैं. कहीं हैं भी तो केंद्र से दूर परिधि पर से झांकते हुए, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों का दबाव-प्रभाव भी परोक्ष रूप से ही शामिल है. किसी व्यंजन में नमक की तरह, चूंकि कविता कवि के संपर्कित

परिवेश की प्रतिक्रिया से ही अधिकांशतः उभरती है, अतः नारियोचित सीमा में नारी की कविता उसके घर-परिवार के दायरे में सिमटी हुई ही होना चाहिए, तभी उसमें अनुभूति की ईमानदारी झलक सकती है. उधार लिये अनुभवों पर लिखित कविता का प्रभाव भी कमजोर होता है, अतः हम कह सकते हैं कि सीमित विषय-वस्तु के बावजूद मौसमीजी की कविता स्वानुभूत है, उसमें अनुभूतियों का खरापन है, परिणामतः प्रभावात्मक भी है.

'जीने की दिशा' संग्रह को पारिवारिक चित्रों, वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं तथा नारी-दशा और दिशा का बोलता हुआ अलबम भी कह सकते हैं, जिसमें व्यक्ति स्वातंत्र्य की आकांक्षा लेकर आकाश को झांकने के लिए मचलती हुई विवश लड़की भी है और युद्ध के आतंक से एकाएक बूढ़े हो रहे बच्चे भी, आत्मीयता की आड़ में भूखे स्पर्श से आस्था की मौत का अहसास करानेवाला शहरी संबध भी है और गिरगिट की तरह रंग बदलनेवाला दो-मुंहा पति भी. अस्पताल के बेड पर मरती जिजीविषा को 'उठे पापा' कहकर अपनी लाचारी को व्यक्त करती मानव-नियति भी है और बीमार औरत की अगस्त्य प्रतीक्षा भी. बाज, चील, गिद्धों की नज़रों से अपरिचित नहीं अबोध भी है और इश्तहार का रूप लेती सौंदर्य प्रतियोगिता में शामिल भारतीय संस्कृति कि नारियां भी. कहीं काली लड़की की बारात लौट जाने की चिंता है तो कहीं सामाजिक प्रतिबंधों के कारण असहज रूप से चुप रधिया है. सूर्यरूपी पुरुष के इर्द-गिर्द नाचती पृथ्वी-सी परिक्रमा करती औरत भी है और अभिलाषाओं के बंधे परों के साथ छटपटाती जवान होती लड़की भी. विद्रोही तेवर लिये अस्मिता तलाशती लड़की भी है और प्राप्त बुढ़ापे से बोझ बना पिता भी. भूख का आकाशव्यापी अहसास भी है और बचाने के बारे में प्रयास भी. जहां मानवीय विवशता है, कत्ल है, दर्द है, सजा है, अर्थी है, नक़ाब है, मुसीबत, संकल्प, प्यार, जख्म, बूढ़े होते पिता, प्रहार, हकीकत, फ़िक्र, ज़िंदगी की गाड़ी है और अंतिम रूप से है यक्ष-प्रश्नः

बताओ बरगद, कोई कैसे
सदियों खड़ा रह सकता है ?
बताओ बरगद, मेरी मां क्यों
हर दिन जलती रहती है ?

वस्तुतः सामाजिक सरोकारों से लैस मौसमी मुखर्जी की परिवर्तनकामी चेतना ने कविता को एक सार्थक हथियार की तरह प्रयुक्त किया है ताकि निर्माण की स्वस्थ दिशा प्राप्त की जा सके.

वैचारिक प्रौढ़ता से युक्त मौसमीजी की कविताओं में बिंब, प्रतीक आदि अपेक्षित उपादानों का यथास्थान बड़ा ही उपयुक्त प्रयोग हुआ है, जिसके कारण वे अपने संप्रेषण में अधिक सक्षम हुई हैं. इन विशेषताओं के कारण व्यंजकता का गुण अनायास ही समाहित हो गया है. फलतः कविता धूमिल का धर्मशाला नहीं बनती, बल्कि बार-बार पढ़ने की आकांक्षा जगाती है.

और अंत में मौसमी मुखर्जी की कविता 'बदलेगा जब वक़्त' से चंद पंक्तियां -

चेतना से कहो / करे विसर्जित आलस
एक अदद जीवन के लिए
यहां युद्धरत है जनमानस
इस जनसमर में
कविता की शमसीर लिये
मैं भी हूं शामिल
आखिर क्यों ? तुम्हीं सोचना...
आज मोल नहीं है / इन शब्दों का
बिल्कुल खोटे हैं ये
कल होगे जब मोर्चे पर खड़े
तब हाथों में तुम्हारे
बनेंगे मेरे ही शब्द
ढाल / तलवार.

सतीश चंद्र पथ, अधेपुरा ८५२११३ (बिहार)

राष्ट्रीयता से ओतप्रोत दोहे

✍ लालजी राकेश

''भावनात्मक एकता''- (दोहा-संग्रह) : *ए. बी. सिंह*
प्रकाशक- रेखा प्रकाशन, ए-१, कैलाशनगर, निंबाहेड़ा-३१२६१७, चितौड़गढ़ (राज) मूल्य : १९५ रु.

वर्तमान समय में हिंदी का समसामयिक लेखन हिंदुस्तान के लोकतंत्र की तरह उलझ गया है. ऐसी स्थिति में किसी रचनाकार के व्यक्तित्व को समझने तथा उसकी सोच और आचरण से परिचित होने के लिए उनकी रचनाओं का गहन अध्ययन और अनुशीलन आवश्यक होता है. वह वक़्त के साक्ष्य को अभिव्यक्त करने से नहीं चूकता क्योंकि वह जानी पहचानी दुनियां को काव्यभूमि बनाता है और अपने समय के दुख-दर्द, असंगतियों, पीड़ा, अतिवाद को यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है, इसलिए उसकी रचनाओं में मानवीय मूल्यों की हिफ़ाजत के लिए संघर्षशीलता एवं संवेदना होती है. साहित्य के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाले ए. बी. सिंह ने अपने दोहा संग्रह 'भावनात्मक एकता' में रचनाधर्मिता एवं मात्राओं का निर्वाह करते हुए समाज और पाठकों को कुछ देने का प्रयास किया है. मज़हब और जात पात के नाम पर हो रहे दंगे फसाद से सिंहजी का मन आहत है. लेकिन उनका मानना है अभी भी भारत के देहातों में जात-पांत की भावना नहीं है. कुछ स्वार्थग्रस्त लोग ही आपसी भाईचारा को तोड़ने का प्रयास करते हैं. उनका निम्न दोहा-

जात-पात के नाम पर, नहीं बंटा देहात ।
कुछ खल रहते हैं जहां, करते घटिया बात ।।

गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है - जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी. जिसके मन में जैसी भावना होती है वह उसी प्रकार सोचता है. इसी बात को अपने निम्न दोहे में सिंहजी ने उल्लेख किया है.

जैसी होती आस्था, चिंतन उसी प्रकार ।
मन का सुख तब मिल सके होते दूर विकार ।।

एकता में अनेकता तभी संभव हो सकती है जब हमारी भावनात्मक एकता बरकरार रहे और इसी पर समाज और देश का उत्थान निर्भर है -

एक दूसरे का जहां, रहता है सहयोग ।
वह समाज अच्छा रहे, करना नया प्रयोग ।।

पश्चिमी सभ्यता ने हमारी संस्कृति और सभ्यता को बहुत नुकसान पहुंचाया है. वर्तमान परिवेश में अभिजात्य वर्ग के लोग भारतीय संस्कृति और सभ्यता को त्याग कर संवेदनहीन हो गये हैं. सिंहजी का मानना है कि भारत गांवों का देश है जहां भारतीय सभ्यता अभी भी बाकी है.

हरा भरा जब तक रहे, भारत का देहात ।
किसी तरह कोई नहीं, हो चिंता की बात ।।

बुद्धिजीवी वर्ग उसी साहित्य को समागत करता है जिसमें बहुजन हिताय, जनकल्याण अथवा लोकमंगल की भावना निहित होती है. हमारा प्रत्येक पर्व एकता एवं जनहित का प्रतीक है. सिंह के कथनानुसार-

सबमें आती एकता, अंधकार हो दूर ।
अहंकार मन का सभी, जैसे उड़े कपूर ।।

ए. बी. सिंह के दोहे सीधे सपाट एवं सहज रूप से लिखे गये हैं. उनमें आधुनिकता के शिल्प व भाषागत चमत्कार की छाया नहीं मिलती. जो प्रत्यक्षतः सहज व साधारण प्रसंगों, घटनाओं और संदर्भों में रहकर भी अस्तित्व को आविष्कृत करते हैं. समूचे विश्व में हमारा भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जहां कई धर्मों के लोग निवास करते हैं जिन्हें समान दृष्टि से देखा जाता है. आज पूरे विश्व में भारतीय संस्कृति को दूसरे देश के लोग धीरे-धीरे अपनाते जा रहे हैं.

देश बहुत भारत बड़ा, सर्वधर्म समभाव ।
इस संस्कृति का पड़ रहा, जग में बड़ा प्रभाव ।।

जिस ज़गह आदर सम्मान नहीं होता, वहां बार-बार जाने से लोगों के व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है. सिंहजी ने आज के बदलते परिवेश, विकृत समाज की विसंगतियों से आहत होकर आदर्श समाज स्थापित करने हेतु लोगों को अपने इस दोहे के माध्यम से सचेत किया है.

अपना जब आदर नहीं होता किसी प्रकार ।
बार-बार मत जा वहां, बचे सभी व्यवहार ।।

आज समकालीन नयी कविताओं के दौर में दोहा, चौपाई, सौरठ, सवैया लिखना आसान बात नहीं है. इस रचनाधर्मिता का निर्वाह वही शख्स कर सकता है जिसे हिंदी व्याकरण एवं मात्राओं का सही ज्ञान हो. श्री ए. बी. सिंह ने अपने दोहा संग्रह 'भावनात्मक एकता' में मात्राओं एवं व्याकरण का सही निर्वाह कर रहीम, कबीर एवं बिहारी की याद ताजा कर दोहों में अपनी सशक्त पकड़ का अहसास कराया है. आज के कुंठग्रस्त आम आदमी की संत्रस्त मानसिकता ने साहित्य का प्रारूप ही बदलकर रख दिया है. कवि अपनी रचनाओं को अपनी अनुभूतियों से विशिष्ट बनाता है. आज सबसे तेज हमला मनुष्य की संवेदना एवं विचारों पर इतना चौतरफा है कि मनुष्य बौना होता जा रहा है. जहां सामाजिक और मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है और इन्सानियत का परिहास हो रहा है. समाज, सत्ता और व्यवस्था में विसंगतियां घर कर गयी हों, तो ए. बी. सिंह के दोहे मन को राहत देते हैं. कुल मिलाकर 'भावनात्मक एकता' में पूर्ण रूप से संवेदना एवं अच्छी भावना को समाहित कर उन्हीं दोहों को प्रकाशित किया गया है जो कि वर्तमान पीढ़ी एवं भावी पीढ़ी के लिए सबक साबित हो सकता है. इसे पठन कर वे अपने भविष्य के प्रति ज्यादा सचेत हो सकते हैं. सिंहजी का यह प्रयास स्तुत्य है.

एस. ई./२३१, छ. रा. वि. म. कॉलोनी,
कोरबा ४९५ ६७७

सार्थक भेंटवार्ताओं की प्रस्तुति

✍ अशोक मिश्र

''वैष्णवों से वार्ता'' - (भेंटवार्ताएं) : *बलराम*
प्रकाशक - नीलकंठ प्रकाशन, महरौली, नयी दिल्ली-११० ०३०.
मूल्य : २७५ रु.

साहित्य की विभिन्न विधाओं के बीच भेंटवार्ता या साक्षात्कार का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि भेंटवार्ता के माध्यम से सुप्रसिद्ध व्यक्तियों के विचार आम पाठक तक पहुंचते हैं. अक्सर देखा गया है कि जब भी कोई नेता-अभिनेता, खिलाड़ी या लेखक प्रसिद्धि के शिखर पर जा बैठता है तो उसके प्रशंसकों और पाठकों के मन में कई सवाल कौंधने लगते हैं कि आखिर उनका जीवन कैसा रहा होगा, उनकी दिनचर्या क्या होती होगी तथा ढेर सारी ऐसी ही अन्य जिज्ञासाएं होती हैं, जिनका उत्तर भेंटवार्ता या साक्षात्कार के माध्यम से पाया जा सकता है. इसका कारण स्पष्ट है कि मनुष्य शुरू से ही जिज्ञासु प्राणी रहा है और यही जिज्ञासा उसे दूसरों के जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त करने को मजबूर करती रही है. इसी जिज्ञासा के चलते साहित्य और पत्रकारिता में भेंटवार्ता का जन्म हुआ.

कथाकार-पत्रकार बलराम की किताब 'वैष्णवों से वार्ता' प्रसिद्ध व्यक्तियों के साक्षात्कारों का खूबसूरत गुलदस्ता है जिसमें देश-विदेश के कोई दो दर्जन जाने-माने साहित्यकार; संस्कृतिकर्मी, नाटककार, फिल्म निर्देशक, शिक्षाशास्त्री, खिलाड़ी और प्रकाशक आदि शामिल हैं. यहां स्मृतिशेष भगवतीचरण वर्मा, बाबा नागार्जुन, जवाहर चौधरी, हरिवंशराय बच्चन और महादेव खेतान से उनके जीवनकाल में की गयी वार्ताएं हैं तो विष्णु प्रभाकर, राजेंद्र यादव, विजयमोहन सिंह, गिरिराज किशोर, अशोक वाजपेयी, कमल गुप्त जैसे दिग्गजों से की गयी भेंटवार्ताएं भी हैं, जो समकालीन लेखन परिदृश्य की मुख्यधारा पर काबिज़ रहकर माहौल को जीवंत और चर्चाधर्मी बनाये रखते हैं. इसके अलावा यहां हबीब तनवीर, उत्पलेंदु चक्रवर्ती और आनंद शुक्ला जैसे भारतीय चर्चित व्यक्ति हैं तो तालिब ओमरान (सीरिया) और शुजात हाशमी (पाकिस्तान) जैसे विदेशी भी यहां हैं. लघुकथा की तर्ज पर कुछ लघुवार्ताएं भी कामतानाथ, महीप सिंह, केदारनाथ सिंह तथा मन्नू भंडारी से की गयी हैं. एक वार्ता किताबों की दुनिया के भीष्म पितामह श्रीकृष्ण से भी है. श्रीकृष्ण से बलराम की यह बातचीत किताबों की दुनिया की कुछ कटु सच्चाइयों को उजागर कर भ्रष्ट तंत्र का काला चेहरा हमारे सामने ले आती है, मगर देखने की ख़ास बात यह है कि श्रीकृष्ण अभी भी निराश नहीं हैं.

किताब के ब्लर्ब पर सुपरिचित आलोचक एवं मीडिया विशेषज्ञ सुधीश पचौरी ने लिखा है : 'वैष्णवों से वार्ता' में इस विधा का सर्वथा नया रूप उजागर हुआ है: जीवन-कथा और वार्ता का मिक्स. इन वार्ता-कथाओं में साहित्यकार, संस्कृतिकर्मी, फिल्मकार, शिक्षाशास्त्री, नाट्यकर्मी तथा विलक्षण खिलाड़ी, सब अपने समग्र व्यक्तित्व और विचारों के साथ उपस्थित हुए हैं. ये वार्ताएं चाहे संवाद शैली में हों या रिपोर्ट में, लेकिन कहीं भी मार्मिक प्रसंग छूटे नहीं हैं. आदि से अंत तक नयी-नयी बातों की परतें खुलती चली जाती हैं. बलराम कथाकार-पत्रकार हैं. इसीलिए वार्ताओं में सरलता व प्रामाणिक आत्मायिता है. वार्ताकार ने इनमें बातचीत और जीवन-कथा को आपस में फेंट दिया है.' किताब के प्रारंभ में बलराम का लंबा भूमिकानुमा 'आत्मालाप' भेंटवार्ता विधा के इतिहास के साथ-साथ उनकी इस किताब का सृजन कैसे और किन स्थितियों में हुआ, इसकी जानकारी देता है. बलराम लिखते हैं कि 'वार्तालाप पाठकों को यदि सिर्फ जानकार बनाये तो यह उसका एक गुण भले ही हो, कोई बहुत बड़ा गुण नहीं होगा, बड़ा गुण यह होगा कि वह पाठक को समझदार बनाये.' बलराम का मानना है कि 'भेंटवार्ता दरअसल पत्रकारिता के खाते में ही आती है. ज्यादा से ज्यादा इसे आप सांस्कृतिक पत्रकारिता कह सकते हैं.' इस लंबे 'आत्मालाप' में बलराम अच्छी भेंटवार्ता की विशेषताओं पर एक गंभीर दृष्टि डाल जाते हैं, जिससे पाठकों को भेंटवार्ता के बारे में काफी कुछ पता चल जाता है, और शोध छात्रों के लिए भी यह प्रासंगिक हो उठता है.

किताब में शामिल कुछ भेंटवार्ताएं संस्मरण शैली में हैं. ऐसी भेंटवार्ताओं में बाबा नागार्जुन, जवाहर चौधरी, महादेव खेतान, आनंद माधव त्रिवेदी और रणजी ट्रॉफी के रिकॉर्डधारी क्रिकेटर आनंद शुक्ला से हुए संवादों को रखा जा सकता है. बाबा नागार्जुन की बातें और संवाद अब हमारे लिए एक कीमती धरोहर हो गये हैं, क्योंकि ये हमारे बीच नहीं है. उनका न होना हमारे लिए एक क्षति तो है, किंतु अपने विचारों के साथ उनका इस किताब में उपस्थित होना हमारे लिए एक उपलब्धि है, जिससे मार्गदर्शन प्राप्त कर हम उनके मूल्यवान विचारों से लाभ उठा सकते हैं.

इस किताब में एक साथ कई विशेषताएं हैं, जिनमें प्रमुख हैं इसकी पठनीयता, सहज संप्रेषणीयता, रोचकता और वैविध्यपूर्ण प्रश्न शैली. बलराम अन्य वार्ताकारों की तरह सरल प्रश्न नहीं पूछते. हर कहीं वे लोगों को घेरते हैं और किस व्यक्ति से कौन-सा सवाल पूछा जाये, इसका पूरा ध्यान रखते हैं. इन वार्ताओं में वे कहीं भी समकालीन साहित्य-सृजन परिदृश्य से बाहर नहीं जाते. इसका पूरा ध्यान रखते हैं कि भेंटवार्ताओं के माध्यम से सार्थक संवाद हो. इनमें नयापन और मौलिकता पैदा करने की कोशिश करते हैं और इसमें वे काफी हद तक सफल हुए हैं. हर वार्ता के प्रारंभ में वे उसका उद्देश्य स्पष्ट करते हैं और फिर उस व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशेषताएं और उसके कृतित्व पर प्रकाश डालते हैं. वे जिससे भी मिले और बतियाये, उसके बारे में पूरी खोजबीन की और उसके कार्यकलापों पर लगातार नज़र रखी. यह उनकी गहरे कथाकार-पत्रकार की दृष्टि ही है, जो वार्ताओं से एक निष्कर्ष की ओर पाठक को अग्रसर कर देती है. उन्होंने भेंटवार्ताओं पर उपशीर्षक भी दिये हैं, जो उस व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशेषता को उजागर करते हैं जैसे - *चित्रलेखा के चतुर चतेरे : भगवतीचरण वर्मा, उखड़े हुए लोगों के जमे हुए सर्जक : राजेंद्र यादव, हिंदी साहित्य के फकीर योद्धा : नागार्जुन, आवारा मसीहा के तपस्वी सर्जक : विष्णु प्रभाकर* आदि. बलराम ने अनौपचारिक शैली, संस्मरण शैली, रिपोर्टिंग शैली तथा कथा शैली का प्रयोग कर वार्ताओं को प्रश्नगत दोहराव से बचाकर वैविध्य प्रदान किया है. वार्ता के दौरान वे 'फ्लैश बैक' शैली का प्रयोग भी करते हैं. यह तकनीक सहज और स्वाभाविक तरीके से सारी स्थितियों का बयान कर देती है.

लखनऊ की मशहूर तिकड़ी यानी अमृतलाल नागर, यशपाल और भगवतीचरण वर्मा में से भगवती बाबू इस किताब में उपस्थित हैं. उनके बचपन, जीवन और संघर्ष पर बलराम ने जिज्ञासापूर्ण सवाल किये हैं, जिनके आत्मीय और अंतरंग ज़वाब उन्होंने दिये हैं. हरिवंशराय बच्चन वार्ता के दौरान शिकायती लहज़े में कहते हैं कि 'आज के युवा कुलीनता का प्रमाण नहीं दे पाते.' विष्णु प्रभाकर रचनाकारों को बहुत महत्वाकांक्षा न पालने की सलाह देते नज़र आते हैं. राजेंद्र यादव से भेंटवार्ता करना टेढ़ी खीर है, कारण कि वे प्रश्नों को अनदेखा कर वार्ता का रुख मोड़ देते हैं

और वार्ताकार को इच्छित जानकारी न देकर अपने जाल में फंसाकर कुछ और ही जानकारी दे जाते हैं. लेकिन यहां बलराम ने उनको बड़े कौशल से घेरकर उनकी बैठकबाजी की आदत और दलित-महिला विमर्श के प्रवक्ता हो जाने के प्रस्थान बिंदु के बारे में पूछा है. यहीं बलराम का असली कौशल दिखा है *(यह भेंटवार्ता 'कथाबिंब' में प्रकाशित हुई थी).* भेंटवार्ता या साक्षात्कार विधा की सामर्थ्य का आकलन-समाकलन करना हो तो राजेंद्र यादव से ओमा शर्मा का साक्षात्कार भी देखना चाहिए, जो 'कथादेश' (संपादकः हरिनारायण) में छपा था. इस भेंटवार्ता के छपते ही विवादों की जो घोर-घनघोर बरसात हुई, वह रुक-रुक कर अब तक जारी है, जबकि अपनी बातों की पृष्ठभूमि बताने के लिए राजेंद्र यादव 'होना/सोना एक खूबसूरत दुश्मन के साथ' जैसा लेख भी लिख चुके हैं. लेकिन इस लेख ने तो जैसे आग में घी का काम करके विवाद को और-और भड़का दिया. एक भेंटवार्ता इससे अधिक और क्या करके अपनी सामर्थ्य प्रकट करे. इस वार्ता से उठा विवाद हिंदी की सीमाओं को पार कर अंग्रेजी अखबारों तक पहुंच गया. ऐसा पहली बार हुआ कि हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में उठे किसी बवंडर ने अंग्रेजी अखबारों को भी अपनी ज़द में ले लिया हो.

'कहानीकार' पत्रिका के संपादक से बातचीत के दौरान बलराम व्यंग्य लेखन पर जहां कमल गुप्त से सवाल करते हैं, वहीं 'लघुकथा और लघुकहानी' का बहस तलब मुद्दा उठाकर उन्हें घेरते हैं. कमल गुप्त ज़वाब देते हैं, किंतु तर्कपूर्ण ढंग से अपनी बात नहीं रख पाते. शायद यही वार्ताकार का उद्देश्य भी रहा. हिमांशु जोशी के लेखन का समीक्षकों द्वारा नोटिस न लिये जाने का प्रश्न उठाते हुए बलराम उनके जीवन संघर्ष, लेखन और उनकी यात्राओं आदि पर जिज्ञासापूर्ण सवाल करते हैं. अंततः हिमांशु जोशी दो-टूकपने के साथ कह देते हैं के 'कृति पर अंतिम होता है काल का निर्णय' वरिष्ठ कवि-आलोचक आशोक वाजपेयी से साहित्य और कलाओं की दुनिया पर अत्यंत विवादास्पद वार्ता है. साहित्य और कलाओं से गहरा सरोकार रखने वाले अशोक वाजपेयी ऐसे साहित्यकार हैं, जो अक्सर विवादों में घिरे रहते हैं. यहां आलोचकों द्वारा अशोक वाजपेयी की कृतियों के साथ भी न्याय न करने को लेकर बलराम उनसे सवाल पूछते हैं. इसके अलावा और भी कई ऐसे सवाल हैं, जिन्हें अक्सर वार्ताकार भय या संकोचवश नहीं पूछते या नज़रंदाज कर देते हैं. कथा-आलोचक विजयमोहन सिंह से की गयी बातचीत कहानी विधा पर अत्यंत महत्वपूर्ण जानकारियां देती है. इस वार्ता में हिंदी कहानी के प्रस्थान बिंदुओं और उतार-चढ़ावों पर मूर्तिभंजक संवाद हुआ है. नयी कहानी आंदोलन एवं आंचलिक कहानी के साथ-साथ आलोचना पर भी कई गंभीर सवाल हैं. जाहिर है कि विजयमोहन सिंह से की गयी यह बातचीत कहानी विधा पर एक नयी रोशनी डाल जाती है. कथाकार-उपन्यासकार और 'पहला गिरमिटिया' जैसी महत्वपूर्ण कृति के लेखक गिरिराज किशोर भी यहां बातचीत के दायरे में हैं *(यह भेंटवार्ता भी 'कथाबिंब' में प्रकाशित हुई थी).* एक ओर उनसे उनकी कृतियों पर बातचीत की गयी है तो दूसरी ओर विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर भी, क्योंकि गिरिराज किशोर भारत के प्रतिष्ठित संस्थान आईआईटी (कानपुर) से जुड़े रहे हैं. गिरिराज किशोर से यह बातचीत बहुआयामी है. इस वार्ता के दायरे में जहां लेखन और विचारधारा आये हैं, वहीं जीवन में निर्णायक भूमिका अदा करने वाले प्रेम जैसे महत्वपूर्ण तत्व पर भी गहन-गंभीर बातचीत है. बातचीत 'पहला गिरमिटिया' जैसी महत्वपूर्ण कृति पर आकर समाप्त हो जाती है, जिसे बलराम की उम्मीद के मुताबिक व्यास सम्मान से नवाज़ा गया. सुपरिचित साहित्यकार गंगाप्रसाद विमल से की गयी बातचीत का केंद्र बिंदु लेखन, प्रगतिशीलता और बीसवीं सदी के अंत में शुरू हुआ वैश्वीकरण है, जिसमें एकदम आज के भारत की स्थितियों का आत्मीय और अंतरंग खुलासा हुआ है.

इस किताब की एक और विशेषता यह है कि वार्ताओं को बलराम ने साहित्यकारों तक ही सीमित न रखकर देशी-विदेशी बहुविध-प्रतिभाओं तक जाकर इसे व्यापकतर बनाया है. उन्होंने हिंदी साहित्य के रचनाधर्मियों के साथ-साथ रंगमंच (हबीब तनवीर), चित्रपट (उत्पलेंदु चक्रवर्ती), वामपंथी प्रचार (महादेव खेतान), पुस्तक प्रकाशन (श्रीकृष्ण), अभिनय (शुजात हाशमी), संस्कृतिकर्म (जवाहर चौधरी) तथा विज्ञान कथा लेखन (तालिब ओमरान) और खेल (आनंद शुक्ला) तक पर वार्ताएं की हैं. मन्नू भंडारी का साक्षात्कार किताब को मर्दवादी नजरिए से बचाता है, किंतु भविष्य में उम्मीद है कि वे अन्य महिला प्रतिभाओं का भी ध्यान रखेंगे. फिर अभी तो उनकी इच्छा ८४ लोगों से वार्ता कर ८४ कोसी कला-साहित्य और संस्कृति की विभूतियों के इर्द-गिर्द परिक्रमा कर 'चौरासी वैष्णवों से दूसरी वार्ता' जैसे बड़े ग्रंथ की योजना को साकार करना है. किताब की एक अतिरिक्त विशेषता यह भी है कि वार्ताकार किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व से आक्रांत या प्रभावित नहीं हुआ है. वार्ताओं के साथ वार्ता के दायरे में आये व्यक्ति का जीवन परिचय वार्ता में चार चांद लगाता है. वार्ताकार ने अत्यंत विवादित सवालों को भी उठाया है, किंतु बेहद शालीनता के साथ. सवालों में कहीं भी तल्खी या कटुता का प्रवेश नहीं होने दिया है. यहीं पर बलराम अन्य वार्ताकारों से एकदम अलग खड़े दिखते हैं. 'वैष्णवों से वार्ता' के बहाने उन्होंने इस विधा की ताकत का एहसास करा कर इन वार्ताओं के माध्यम से अत्यंत सार्थक संवाद किये हैं, और इन्हें कहानी, कविता और उपन्यास की तरह रच कर अपनी मौलिकता और श्रेष्ठता का एहसास कराया है. बलराम ने जैसे रिपोर्ताज और लघुकथा को एक ताकतवर विधा साबित किया है, वैसे ही यह भी साबित कर दिया है कि भेंटवार्ता या साक्षात्कार विधा भी साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ही दमदार हो सकती है.

१६००/११४, त्रिनगर, दिल्ली-११० ०३५

एक कवि की पूरी कविता

✍ डॉ. वरुण कुमार तिवारी

आंसुओं को मत रोको
रास्ता दो उन्हें
आंसू बेकार का पानी नहीं
जो दर्द में
दबे पांव सरक आते हैं,
आंखों के रास्ते.

आंसुओं के साथ
आंखों की धूल भी
बह जाती है
और आंसुओं की बाढ़ में
दिल पर पड़ा
पत्थर भी.

सारे संताप बह जाते हैं
आंसुओं की गंगा में,
दिल का गंगा स्नान हैं आंसू.

जब
दर्द से सिसकता है कोई
तो निजात दिलाते हैं
आंसू ही,
जब व्यंग्य के तीर चुभोता है
कलेजे में कोई
तब ज़ख्म को सहलाती हैं
आंसुओं की उंगलियां ही,

जब
तनाव झेलते-झेलते
तड़प उठता है आदमी
तब सारे शरीर में
फैलता है
एक ज़हरीला रसायन
जिसे आंसू बहा देते हैं
और राहत महसूस करता है
आदमी.

स्त्रियां सहज ही
गुज़र जाती हैं
दर्द की कंटीली राहों से
लेकिन पुरुष दबा देते हैं
जोर से
भीतर ही भीतर आंसू
और झेलते हैं
दिन-रात तनाव
फिर दर्द से बिलबिला उठते हैं.

आंसुओं को मत रोको
रास्ता दो उन्हें
आंसू हैं वरदान बच्चों को,
आंसू हैं उपहार बड़ों को.
जब कोई बच्चा रोता है
तो वह होता है
निश्छल-निर्भार,
जब कोई बड़ा रोता है
तो वह रोता है
निरहंकार
अपनी पद-प्रतिष्ठा की
फ़िक्र किये बग़ैर.
एक निरहंकारी आदमी
बहता है आंसुओं के साथ
और बहा देता है
सारे संताप-संत्रास.

तो जब दर्द उठे तुम्हें
तनाव से

जब तुम तन जाओ,
दुःख का सैलाब
जब चारों ओर उमड़ पड़े
तब कर लेना बंद
दरवाजे-खिड़कियां
और अकेले में
रो लेना जी-भरकर
क्योंकि ये
महज आंसू भर नहीं हैं
शायर के.

ज़ज्बों द्वारा गायी गयी
ग़ज़ल है आंसू
एक कवि की,
पूरी कविता है आंसू,
हृदय के किसी
शांत क्षण में
कवि टेनीसन ने
गाये हैं
आंसुओं के कोमल गीत.

आंसुओं को मत रोको
रास्ता दो उन्हें,
आंसू बेकार का पानी नहीं
जो दर्द में
दबे पांव सरक आते हैं
आंखों के रास्ते.

स्टेट बैंक कॉलोनी,
वीरपुर ८५४३४० (बिहार)

ग़ज़लें

✍ चांद 'शेरी'

तुम ख़ुदा से यही दुआ करना,
किश्ते-दिल को हरा-भरा करना.
मुझसे मिलने को उन क़िताबों में,
मेरे अशआर तुम पढ़ा करना.
अपने ख़्वाबों की डायरी तुम,
दास्ताने रक़म किया करना.
मंदिरों-मस्जिदों में इंसानों,
फ़र्जे-इंसानियत अदा करना.
गूंगे-बहरे नगर के पंछी हैं,
इनसे बेकार है गिला करना.
कल का सूरज नयी किरण देगा,
तुम किसी फूल से खिला करना.
नफ़रतों का ये दौर है 'शेरी',
बात इंसानियत की क्या करना.

❋❋❋

रहनुमा थे जो मदारी हो गये,
लुट गये राही भिखारी हो गये.
एकता की नींव के दुश्मन सभी,
फावड़े - गेती - तगारी हो गये.
रह गयी इंसानियत दम तोड़ कर,
लोग हिंसा के पुजारी हो गये.
वक़्त ने ढाया सितम कुछ इस तरह,
लोग अपने ही कटारी हो गये.
उन परिंदों की उड़ानें देख कर,
ख़ून के ख़ूगर शिकारी हो गये.
गांव के वो सीधे-सादे लोग भी,
आज धोती से सफ़ारी हो गये.
अजनबी 'शेरी' है अपने शहर में,
शहर पर अपने ही भारी हो गये.

१, स्माल स्केल, इंडस्ट्रियल एरिया,
कोटा-३२४००७

✍ अनिल वर्मा

मुझको मिला है दर्द का संसार शहर में,
बहती है अब हवा भी बीमार शहर में.
इंसानियत का हो रहा व्यापार शहर में,
मारा गया गरीब ही हर बार शहर में.
जो रास्ते में देखो पत्थर से पड़े हैं,
जाने कहां है उनका घर-बार शहर में.
धूप की चौखट पर जो खड़ा सूख रहा है,
उस पेड़ का ना कोई मददगार शहर में.
अख़बार क्या कहेंगे सब जानते हैं हम,
कितने छुपे हुए हैं गद्दार शहर में.
मेरे ख़िलाफ साज़िश मेरी नाक के नीचे,
दुश्मन हैं मेरे कितने असरदार शहर में.
मैं धुंध के साये में खड़ा सोच रहा हूं,
लेकर कहां से आऊं अंगार शहर में.

❋❋❋

देख कर सूरत तुम्हारी, आईना डर जायेगा,
जानता हूं पाप तेरा, मेरे ही सर आयेगा.
कैद हूं मैं अपने ही, आईने में दोस्तो,
जाने कब कोई कहीं से, एक पत्थर आयेगा.
एक कुत्ता रोज़ रोता है, गली में रात को,
हर कोई ये सोचता है, कल कोई मर जायेगा.
छोड़ कर सब चल दिये हैं इस नदी की रेत पर,
चिलचिलाती धूप में ये परकटा मर जायेगा.
आपको तो मिल न पाया, एक मुट्ठी आसमां,
मेरे हिस्से में चलो, इक रेत का घर आयेगा.

ए आई-२१, अंसल्य सूर्योदय विहार,
शास्त्री नगर, मेरठ-२५० ००५

यही वह सच है

✍ ईश्वर सिंह बिष्ट 'ईशोर'

यह सच उतना ही सच था / जितना सोच गया
पीढ़ियों को लांघते / सीढ़ियों को नापते
जीवन के हर क्षण से गुज़रते
किसी बच्चे की हथेली में / एक सिक्का धरते
वह खुशी से किलक उठता / मूर्खता को ढोते
प्रभु की प्रार्थना करते / हम खामोश हो जाते
उन क्षणों में जाना चाहते / जिनमें हम जा चुके,
जी चुके अतीत के टुकड़े को मुट्ठी में कैद कर
भविष्य के स्वप्न सजोते / यही वह सच है,
जिसे हम अक्सर दोहराते.

३२ इंदिरा नगर,
रतलाम ४५७ ००१ (म. प्र.)

ग़ज़लें

✍ चांद 'शेरी'

तुम ख़ुदा से यही दुआ करना,
किश्ते-दिल को हरा-भरा करना.
मुझसे मिलने को उन क़िताबों में,
मेरे अशआर तुम पढ़ा करना.
अपने ख़्वाबों की डायरी तुम,
दास्ताने रक़म किया करना.
मंदिरों-मस्जिदों में इंसानों,
फ़र्ज़े-इंसानियत अदा करना.
गूंगे-बहरे नगर के पंछी हैं,
इनसे बेकार है गिला करना.
कल का सूरज नयी किरण देगा,
तुम किसी फूल से खिला करना.
नफ़रतों का ये दौर है 'शेरी',
बात इंसानियत की क्या करना.

❋❋❋

रहनुमा थे जो मदारी हो गये,
लुट गये राही भिखारी हो गये.
एकता की नींव के दुश्मन सभी,
फावड़े - गेती - तगारी हो गये.
रह गयी इंसानियत दम तोड़ कर,
लोग हिंसा के पुजारी हो गये.
वक़्त ने ढाया सितम कुछ इस तरह,
लोग अपने ही कटारी हो गये.
उन परिंदों की उड़ानें देख कर,
ख़ून के ख़ूगर शिकारी हो गये.
गांव के वो सीधे-सादे लोग भी,
आज धोती से सफ़ारी हो गये.
अजनबी 'शेरी' है अपने शहर में,
शहर पर अपने ही भारी हो गये.

१, स्माल स्केल, इंडस्ट्रियल एरिया,
कोटा-३२४००७

✍ अनिल वर्मा

मुझको मिला है दर्द का संसार शहर में,
बहती है अब हवा भी बीमार शहर में.
इंसानियत का हो रहा व्यापार शहर में,
मारा गया गरीब ही हर बार शहर में.
जो रास्ते में देखो पत्थर से पड़े हैं,
जाने कहां है उनका घर-बार शहर में.
धूप की चौखट पर जो खड़ा सूख रहा है,
उस पेड़ का ना कोई मददगार शहर में.
अख़बार क्या कहेंगे सब जानते हैं हम,
कितने छुपे हुए हैं गद्दार शहर में.
मेरे ख़िलाफ साज़िश मेरी नाक के नीचे,
दुश्मन हैं मेरे कितने असरदार शहर में.
मैं धुंध के साये में खड़ा सोच रहा हूं,
लेकर कहां से आऊं अंगार शहर में.

❋❋❋

देख कर सूरत तुम्हारी, आईना डर जायेगा,
जानता हूं पाप तेरा, मेरे ही सर आयेगा.
कैद हूं मैं अपने ही, आईने में दोस्तो,
जाने कब कोई कहीं से, एक पत्थर आयेगा.
एक कुत्ता रोज़ रोता है, गली में रात को,
हर कोई ये सोचता है, कल कोई मर जायेगा.
छोड़ कर सब चल दिये हैं इस नदी की रेत पर,
चिलचिलाती धूप में ये परकटा मर जायेगा.
आपको तो मिल न पाया, एक मुट्ठी आसमां,
मेरे हिस्से में चलो, इक रेत का घर आयेगा.

ए आई-२१, अंसल्य सूर्योदय विहार,
शास्त्री नगर, मेरठ-२५० ००५

यही वह सच है

✍ ईश्वर सिंह बिष्ट 'ईशोर'

यह सच उतना ही सच था / जितना सोच गया
पीढ़ियों को लांघते / सीढ़ियों को नापते
जीवन के हर क्षण से गुज़रते
किसी बच्चे की हथेली में / एक सिक्का धरते
वह खुशी से किलक उठता / मूर्खता को ढोते
प्रभु की प्रार्थना करते / हम खामोश हो जाते
उन क्षणों में जाना चाहते / जिनमें हम जा चुके,
जी चुके अतीत के टुकड़े को मुट्ठी में कैद कर
भविष्य के स्वप्न सजोते / यही वह सच है,
जिसे हम अक्सर दोहराते.

३२ इंदिरा नगर,
रतलाम ४५७ ००१ (म. प्र.)

लघुकथाएं

नैतिकता

✍ सत्य नारायण गुप्त

बस सवारियों से खचाखच भरी हुई थी. अनेक लोग खड़े खड़े सफ़र कर रहे थे. एक ज़गह बस रुकी तो एक बीमार बूढ़ा व्यक्ति बस में चढ़ा. उसने सीट पर बैठे हुए लोगों को करुण दृष्टि से देखा, शायद कोई थोड़ी सी ज़गह दे दे. बूढ़े को देख कर बैठे हुए लोगों ने अपनी नज़रें दूसरी तरफ घुमा लीं. उन्हें डर था कि बूढ़े से नज़र मिलाने से कहीं नैतिकता के आधार पर सीट न छोड़नी पड़े. दूसरी तरफ नज़र फिराकर वे अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो गये.

जो लोग बस में खड़े हुए बस में आराम से बैठे लोगों को देख कर मन ही मन कुढ़ रहे थे, उन्हें बूढ़े के बहाने नैतिकता पर, पतन पर चिंता प्रकट कर अपनी भड़ास निकालने का मौका मिल गया. उनकी टिप्पणियों से ऐसा लगा कि खड़े हुए सभी लोग नैतिक मूल्यों के प्रति अति संवेदनशील हैं. एक मोटे, ताजे दबंग सज्जन ने नेताई अंदाज़ में फरमाया - कैसा बुरा जमाना आ गया है, कोई बीमार बूढ़े के लिए भी सीट छोड़ना नहीं चाहता. अभी कोई सुंदर लड़की होती तो उसे पास बिठाने की होड़ लग जाती. तभी बस रुकी और सीट पर बैठा एक व्यक्ति नीचे उतर गया. बूढ़ा जो दरवाज़े के पास ही खड़ा था, खाली सीट मिलने की आशा से एक कदम आगे बढ़ा पर खाली सीट हथियाने को खड़े हुए लोगों में इतनी धक्का-मुक्की हुई की बूढ़ा गिरते-गिरते बचा. खाली सीट पर वही दबंग सज्जन बैठने में सफल हुए जो नैतिकता पर ज़ोर-ज़ोर से बोल रहे थे. सीट पर बैठते ही उन्होंने भी अपनी नज़र दूसरी तरफ़ घुमा ली.

पायदान

अरुण ने रेस्तरां में प्रवेश किया तो उसे दूर कोने की टेबल पर रश्मि दिखाई पड़ गयी.

– हाय रश्मि, वेरी सॉरी, मुझे कुछ देर हो गयी.

– आज कोई नयी बात तो नहीं, इतंज़ार करवाने और तड़पाने में तो तुम्हें मजा आता है.

– अरे, तुम तो नाराज़ हो गयीं. चलो डिनर का ऑर्डर देते हैं. अरुण ने बेयरे को बुला कर ऑर्डर दिया. रश्मि एकटक छत की ओर देख रही थी.

– तुम्हारी खामोशी शाम का सारा मजा किरकिरा करे दे रही है, आखिर बात क्या है ?

– अरुण, अब हमारे प्रेम प्रसंग को लेकर उंगलियां उठने लगी हैं और तुम हो कि शादी की बात टालते ही जा रहे हो, अब तुम्हें मेरे पापा से बात कर ही लेनी चाहिए.

– तुम जानती हो रश्मि, मैं तुम्हें दिलोजान से प्यार करता हूं और और तुम्हें दुनिया की हर खुशी देना चाहता हूं, पर मैं अपने प्रमोशन की प्रतीक्षा कर रहा हूं.

– तो इसमें अड़चन क्या है ? यह बात तो तुम कब से कहते आ रहे हो.

– दरअसल मेरा प्रमोशन मेरे बॉस की खुशी पर निर्भर है, वह खुश हो जाय तो मेरा काम बन जाय. रश्मि तुम मुझसे बहुत प्यार करती हो न, तुम चाहो तो मेरा प्रमोशन हो सकता है.

– अरुण, मैं तुम्हारे लिए अपनी जान भी दे सकती हूं. बताओ मुझे क्या करना है ?

– तुम्हें मेरी खातिर मेरे बॉस को खुश करना होगा.

– क्या कहा ! तुम चाहते हो कि तुम्हारे प्रमोशन के लिए मैं तुम्हारे बॉस की हम-बिस्तर बन जाऊं ?

– रश्मि, समझने की कोशिश करो, आजकल सोसायटी में ये सब कुछ चलता है और फिर प्रमोशन के बाद मैं तुमसे शादी करने ही वाला हूं.

– बहुत खूब अरुण ! प्रेमिका के पायदान पर चढ़कर प्रमोशन चाहते हो, यदि मर्द हो तो पहले मुझसे शादी करो मैं भी तो देखूं कि तुम प्रमोशन के लिए अपने बीवी के पायदान पर भी चढ़ सकोगे कि नहीं.

अरुण अवाक रश्मि के तमतमाए चेहरे को देखता रह गया. रश्मि तेजी से रेस्तरां से बाहर निकल गयी.

१०-एन, दिलकुशा गार्डन, लखनऊ, कैंट-२२६००२.

भय

✍ रमेश मनोहरा

"स्याला, ये तो पक्का हरिश्चंद्र निकला."

"न खुद खाता है न दूसरे को खाने देता है."

"मगर ऐसे हरिश्चंद्र ज्यादा दिन टिकते नहीं हैं."

"मगर उनका स्थानांतरण भी तो नहीं हो रहा है ?"

"आप उन्हें कितनी ही गालियां दें, मगर फाइलों का तो वह कीड़ा है. कहां क्या ग़लती हुई तुरंत भांप लेता है."

"समय का भी बड़ा पाबंद है. जरा सी देर हो जाती है तो बुरी तरह डांट देता है."

"सुना है बहुत पहुंच वाला है, इसलिए किसी से डरता नहीं."

दफ़्तर के सारे कर्मचारी कैंटीन में बैठ कर इसी तरह चर्चा करके अधिकारी को गालियां देकर अपनी भड़ास निकालते हैं - मदन दुबे जो आज से तीन साल पहले इस कार्यालय में अधिकारी बनकर आये. इसके पूर्व जो भी अधिकारी रहे उनके और कर्मचारियों के बीच ऐसा रिश्ता जुड़ा हुआ रहता था कि जो भी पैसा मिलता था, आपस में बांट लिया करते थे. ऐसे सुनहरे दिन मदन दुबे के आने से ख़त्म हो गये, न वे खुद रिश्वत लेते हैं और न ही किसी को लेने देते है. सबकी ऊपर की कमाई बंद कर दी थी. इसलिए उनकी टीका-टिप्पणी करना लोगों की रूटीन बन गया था. जो अधीनस्त कर्मचारी देर से पहुंचते हैं उनकी खैर नहीं होती थी.

"चलिए, लंच का समय ख़त्म हो गया है ?" एक कर्मचारी ने कहा. "हमें टेबिलों पर न पाकर नाराज़ होयेगा ?"

"डांटेगा जानवर की तरह."

इस भय से सारे कर्मचारी जो लंच के समय कैंटीन में बैठकर टीका-टिप्पणी कर रहे थे, कैंटीन से उठकर अपनी टेबिलों पर आकर ऐसे बैठ गये जैसे कोई भीगी बिल्ली आकर बैठती है.

शीतला गली, जावरा (म. प्र.)

लेटर बॉक्स

(पृष्ठ -३ से आगे)

ताली-बटोरू महाकवि आलोक ने (जो न 'डॉ.' हैं, न 'प्रो.') जिन शब्दों, वाक्यों का प्रयोग किया है, वह सूरज पर थूकने जैसा निंदनीय ही है !

श्री पाठक जी से पिछले कुछ वर्षों से व्यक्तिगत संपर्क में हूं. साहित्य पर उनसे चर्चाएं हुई हैं, बड़े मंचों पर से उनके सारगर्भित, विद्वत्ता-प्रचुर वक्तव्य भी सुने हैं, उनकी रचनाएं भी पढ़ी हैं, सुनी हैं. संपूर्ण हिंदी-साहित्य-विश्व में श्री पाठकजी एक आदरणीय, विख्यात कवि एवं साहित्य मर्मज्ञ के रूप में माने जाते हैं. "केवल पुराना ही महान होता है" यह धारणा पाठकजी ने कभी भी परोक्ष/अपरोक्ष शब्दों में व्यक्त नहीं की. तुलसी, बच्चन, नेपाली, महादेवी ने जो कालजयी सामग्री हिंदी साहित्य को प्रदान की है, उसे नकारने का साहस कोई भी समझदार साहित्यिक नहीं कर सकता ! आलोक महोदय, जैसे केवल पुराना होना ही महानता का द्योतक नहीं है, वैसे ही केवल नया होना भी महानता का द्योतक नहीं है ! नयी कहानी, नयी कविता के नाम पर जो कुछ तथाकथित नव-रचयिताओं ने लिखा है, लिख रहे हैं, केवल कुछ अपवादात्मक रचनाओं को छोड़ कर, अधिकांश कूड़ा ही है ! 'नया साहित्य' के नाम पर क्लिष्टता, गूढ़ता, अश्लीलता के हथियारों से हिंदी साहित्य की हत्या ही की गयी है ! काश ! कानून में इस हत्या के लिए भी कठोरतम सजा की व्यवस्था होती !

और आलोक महोदय ने 'कुछ नंदलालों, पाठकों' इन शब्दों का प्रयोग कर अपनी जिस छिछली मानसिकता का प्रदर्शन किया है, उसके लिए किसी विशेषण का प्रयोग मैं इसलिए नहीं कर रहा हूं कि मैं शालीनता की मर्यादा का उल्लंघन कभी भी नहीं करता.

महामहिम आलोकजी, आप श्री पाठकजी का श्री बी. आर. चोपड़ा के वातानुकूलित केबिन में बैठना इसलिए नहीं सह पा रहे हैं क्योंकि अंगूर खट्टे हैं !

रही बात मंच संचालन की, मंच से काव्य पाठ कर तालियां बटोरने की; तो आलोक जी, यह तो कोई भी भांड़, विदूषक कर सकता है, करता है ! आत्मश्लाघा कर अपने मुंह मियां मिट्ठू बनने वालों को हास्यास्पद ही समझ जाता है !

. . . .कुछ और प्रतिक्रियाएं

और अरविंदजी, दुःख तो इस बाद का है कि 'छापने से पहले आप सामग्री को ठीक तरीके से जांच तो लें' - आलोक जी के इस आग्रह पर आपने ध्यान नहीं दिया. आपने 'कथाबिंब' को व्यक्तिगत निंदा का 'खुला मंच' बना कर उसे ऊंचे स्तर से गिरा दिया. आपसे ऐसी आशा नहीं थी. 'खुला मंच' इतना खुला नहीं होना चाहिए कि कोई भी उस मंच से किसी पर मनमाना कीचड़ उछाल सके.

आप संपादक हैं. मेरे इस पत्र को 'कथाबिंब' में छापने या इसे कूड़ादानी में फेंकने के लिए आप स्वतंत्र हैं; परंतु इतना आग्रह अवश्य करूंगा कि यदि इसे छापें तो समग्र रूप में छापें.

✣ भगीरथ शुक्ल
शिव-पार्वती निवास, मार्केट रोड,
बोईसर ४०१५०१, जिला-ठाणे,

✣ 'कथाबिंब' के दो-तीन अंक पढ़ चुका हूं परंतु मित्रों के माध्यम से. बिना लाग-लपेट एवं झिझक के कह सकता हूं कि यह पत्रिका मुझे बेहद पसंद आयी. सबसे बड़ी बात कि इसमें कहानी, लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल, आत्मकथ्य, साक्षात्कार आदि का इतना सहज और सुंदर समावेश है कि कोई भी पाठक इसका प्रशंसक बने बिना रह ही नहीं सकता. आपके संपादकीय 'कुछ कही, कुछ अनकही' का अपना अलग आकर्षण है. शायद यह आपकी पैनी नज़र, कुशल संपादन तथा कथाबिंब परिवार की निष्ठा एवं लगन का परिणाम है जिससे प्रभावित हो मैंने पत्रिका की आजीवन सदस्यता ग्रहण करने का निश्चय किया है ताकि केवल मित्रों की कृपादृष्टि पर इसे पढ़ने के लिए आश्रित न रहना पड़े. आजीवन सदस्यता का चैक संलग्न है.

✣ राजपाल यादव 'अलबेला'
सी-९, न्यू डॉक्टर्स कॉलोनी,
जगजीवन नगर, धनबाद ८२६ ००३ (बिहार)

With Best Compliments From

POLY ENTERPRISES

ADVERTISING AGENTS FOR CENTRAL RAILWAYS

कुछ कही, कुछ अनकही

(. . . पृष्ठ ४ से आगे)

समय रहते दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों को अमरीका के खेल को अच्छी तरह समझना चाहिए. अमरीका विश्व पर एकछत्रीय राज्य करना चाहता है ताकि धरती के संसाधनों का जब चाहे उपयोग कर सके. अमरीका की धरती के नीचे तेल का अकूत भंडार है जिसे वह फिलहाल हाथ नहीं लगाना चाहता. चाहे अफ़गानिस्तान हो या ईराक सारी लड़ाई तेल के लिए है. 'बिग ब्रदर' का दूसरा उद्देश्य अपने माल की ख़पत है. भारत और चीन जहां विश्व की ४० % जनसंख्या रहती है, सबसे बड़ी मंडियां हैं. इनसे मधुर संबंध बने रहना ज़रूरी है.

भारतीय उप-महाद्वीप के देशों के लिए अमरीकी 'आतंकवाद' और शोषण से बचने का बस अब एक ही उपाय बचा है. उन्हें हर तरह के मतभेदों को भुलाकर एकजुट हो जाना चाहिए. भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश अपनी सेनाओं पर जो खर्चा करते हैं उसे काफी कम किया जा सकता है. अन्य क्षेत्रों में भी आपसी सहयोग बढ़ाया जा सकता है. उप-महाद्वीप की समृद्धता और प्रगति के लिए सह-अस्तित्व ही एक मात्र रास्ता है. कुछ अन्य पड़ोसी देशों को भी साथ लिया जा सकता है. दो बार विफल होने के बावजूद भी भारतीय प्रधानमंत्री ने पाकिस्तान की तरफ़ दोस्ती का हाथ बढ़ाया है. इसमें दो राय नहीं हो सकतीं कि श्री बाजपेयी विश्व के सबसे वरिष्ठ, सबसे अनुभवी सांसद और राजनीतिज्ञ हैं. वे एक कल्पनाशील युगदृष्टा हैं. यह इस उप-महाद्वीप का, ख़ासतौर से भारत का सौभाग्य है कि आज बागडोर उनके हाथों में है.

पिछले अंक के संपादकीय में राजदीप सरदेसाई के स्थान पर दिलीप सरदेसाई का नाम चला गया था. जिन पाठकों ने इस ओर ध्यान दिलाया हम उनके ऋणी हैं. इसी अंक के अंतिम पृष्ठ पर 'रेखा-स्मृति पुरस्कार' का अभिमत-पत्र दिया गया है. पाठकों से निवेदन है कि इस लोकतांत्रिक चयन में अधिक से अधिक संख्या में भाग लें तभी यह आयोजन सफल होगा.

अरविंद

'कथाबिंब' यहां भी उपलब्ध है :

- पीपुल्स बुक हाउस, मेहर हाउस, १५ कावसजी पटेल स्ट्रीट, मुंबई - ४०० ००१. फोन : २२८७ ३७३८
- व्यवस्थापक बुक कॉर्नर, श्रीराम सेंटर, सफ़दर हाशमी मार्ग, नयी दिल्ली ११० ००१.
- डॉ. देवकीनंदन, ए-१/३०४, हृषीकेश, स्वामी समर्थ नगर, लोखंडवाला कॉम्प्लेक्स, अंधेरी (प.), मुंबई - ४०००५३. फोन : २६३२ ०४२५
- श्री वीरेंद्र सिंह चंदेल, १/१२१ सिविल लाइन्स, जजेस कॉलोनी के पास, फतेहगढ़ - २०९६०१
- श्री रविशंकर खरे, हरिहर निवास, माधोपुर, गोरखपुर - २७३००१.
- श्री राजेंद्र आहुति, ए १३/६८, भगतपुरी, वाराणसी-२२१००१.
- स ब द, १७१ कर्नलगंज, स्वराज भवन के सामने, इलाहाबाद - २११००२.
- डॉ. गिरीश चंद श्रीवास्तव, ५९ खैराबाद, दरियापुर रोड, सुलतानपुर-२२८००१. फोन : २३२८५
- श्री अनिल अग्रवाल, परिवेश लघु पत्रिका मंडप, पुराना गंज, रामपुर-२४४९०१. फोन : २३२७३६१
- श्री योगेंद्र दवे, ब्रम्हपुरी, पीपलिया, जोधपुर-३४२००१
- श्री राही सहयोग संस्थान, शकुंतला भवन, बालाजी के मंदिर के पास, वनस्थली-३०४ ०२२ (राज.). फोन : २८३६७
- श्री भुवनेश कुमार, सं : कविता, २२० सेक्टर-१६, फरीदाबाद - १२१००२
- श्री गोविंद अक्षय, अक्षय फीचर सर्विसेस, १३-६-४११/२, रामसिंहपुरा, कारवान, हैदराबाद - ५०००६७
- श्री नूर मुहम्मद 'नूर', सी. सी. एम., क्लैम्स लॉ, दक्षिण पूर्व रेल्वे, ३, कोयला घाट स्ट्रीट, कोलकाता - ७००००१
- श्री देवेंद्र सिंह, देवगिरी, आदमपुर घाट मोड़, भागलपुर - ८१२००१.
- व्यवस्थापक, सर्वोदय बुक स्टाल, रेल्वे स्टेशन, भागलपुर - ८१२००१.
- श्री कलाधर, आदर्श नगर, नया टोला, पूर्णियां - ८५४३०१.
- मेसर्स लाल मणि साह, आर.एन.साव. चौक, पूर्णिया - ८५४३०१.
- श्री महेंद्र नारायण पंकज, राजकीय प्राथमिक विद्यालय, पैकपार, मेरीगंज, अररिया - ८५४३३४.
- श्री बसंत कुमार, दीर्घतपा, वार्ड-६, अररिया -८५४३३४.
- सुश्री मेनका मल्लिक, चतुरंग प्रकाशन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५११३४
- श्री रणजीत बिहारी, पत्रिका मंडप, पंचवटी, चीरागोड़ा, धनबाद - ८२६००१.
- श्री देवेंद्र होलकर, १८८ सुदामा नगर, अन्नपूर्णा सेक्टर, इंदौर - ४५२००९. फोन : २४८४ ४५२
- श्री मिथिलेश 'आदित्य', पोस्ट बॉक्स-१, मेनरोड, जोगबनी - ८५४३२८
- श्री संजय सिन्हा, 'सिन्हा सदन', भगतपाड़ा, उषाग्राम, आसनसोल-७१३३०३. फोन : (०३४१) २२१३९३७

हमकदम लघु-पत्रिकाएं

(प्रस्तुत सूची में यदि कोई त्रुटि रह गयी हो या किसी पत्रिका का प्रकाशन बंद हो गया हो तो कृपया सूचित करें.)

बराबर (पा.) - ए. पी. अकेला, ५ यतीश बिजनेस सेंटर, इर्ला सोसायटी रोड, विलेपार्ले (प.), मुंबई - ४०० ०५६
कथादेश (मा.) - हरिनारायण, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., १००९ इंद्रप्रकाश बिल्डिंग, २१ बाराखंभा रोड, नयी दिल्ली - ११०००१
दाल-रोटी (मा.) - अक्षय जैन, १३ रश्मन अपार्टमेंट, एस. एल. रोड, मुलुंड (प.), मुंबई - ४०० ०८०
मधुमति (मा.) - वेदव्यास, राजस्थान साहित्य अकादमी, हिरन मगरी, सेक्टर-४, उदयपुर ३१३ ००२
वागर्थ (मा.) - विजय दास, भारतीय भाषा परिषद, ३६-ए, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता - ७०० ०१७
समाज प्रवाह (मा.) - मधुश्री काबरा, गणेश बाग, जवाहर लाल नेहरू रोड, मुलुंड (प.), मुंबई ४०० ०८०
साहित्य अमृत (मा.) - विद्यानिवास मिश्र, ४/१९ आसफ अली मार्ग, नयी दिल्ली - ११० ००२
साहित्य क्रांति (मा.) - अनिरुद्ध सिंह सेंगर 'आकाश,' भार्गव कॉलोनी, गुना ४७३ ००१ (म. प्र.)
शुभ तारिका (मा.) - उर्मि कृष्ण, ए-४७ शास्त्री कॉलोनी, अंबाला छावनी - १३३ ००१
शिवम् (मा.) - विनोद तिवारी, जय राजेश, ए-४६२, सेक्टर-ए, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०३९
अरावली उद्घोष (त्रै.) - बी. पी. वर्मा 'पथिक', ४४८ टीचर्स कॉलोनी, अंबामाता स्कीम, उदयपुर ३१३ ००४
अपूर्व जनगाथा (त्रै.) - डॉ. किरन चंद्र शर्मा, डी-७६६, जनकल्याण मार्ग, भजनपुरा, दिल्ली - ११० ०५३
अभिनव प्रसंगवश (त्रै.) - डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ, डी-१३१ रमेश विहार, निकट ज्ञान सरोवर, अलीगढ़ (उ. प्र.)
असुविधा (त्रै.) - रामनाथ शिवेंद्र, ग्राम-खड़ुई, पो. पद्मूगंज, सोनभद्र - २३१ २१३ (उ. प्र.)
अक्षरा (त्रै.) - विजय कुमार देव, मं. प्र. रा. समिति, हिंदी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - ४६२ ००२
आकंठ (त्रै.) - हरिशंकर अग्रवाल / अरुण तिवारी, महाराणा प्रताप वार्ड, पिपरिया ४६१ ७७५ (म. प्र.)
अंचल भारती (त्रै.) - डॉ. जयनाथ मणि त्रिपाठी, अंचल भारती प्रिंटिंग प्रेस, रा. औ. आस्थान, गोरखपुर मार्ग, देवरिया - २७४ ००१
अंतरंग (त्रै.) - प्रदीप बिहारी, चतुरंग प्रकाशन, मेनकायन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५१ १३४
अंतरंग संगिनी (त्रै.) - दिव्या जैन, गोविंद निवास, सरोजिनी रोड, विलेपार्ले (प.), मुंबई - ४०० ०५६
कंचन लता (त्रै.) - भरत मिश्र 'प्राची', डी-८, सेक्टर-३ए, खेतड़ी नगर - ३३३ ५०४
कृति ओर (त्रै.) - विजेंद्र, सी-१३३, वैशाली नगर, जयपुर - ३०२ ०२१
कथन (त्रै.) - रमेश उपाध्याय, १०७, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-३, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली - ११० ०६३
कथा समवेत (त्रै.) - शोभनाथ शुक्ल, कल्लूमल मंदिर, सब्जी मंडी, चौक, सुल्तानपुर - २२८ ००१
कारवां (त्रै.) - कपिलेश भोज, पो. सोमेश्वर, अल्मोड़ा - २६३ ६३७
कल के लिए (त्रै.) - डॉ. जयनारायण, 'अनुभूति', प्लानिंग कॉलोनी, अलीगढ़ (उ. प्र.)
कहानीकार (त्रै.) - कमल गुप्त, के ३०/३६ अरविंद कुटीर, वाराणसी २२१ ००१
गुंजन (त्रै.) - मोहन सिंह रावत, रोहिला लॉज परिसर, तल्लीताल, नैनीताल - २६३ ००२
तटस्थ (त्रै.) - डॉ. कृष्ण बिहारी सहल, विवेकानंद विला, पुलिस लाइन्स के पीछे सीकर - ३३२ ००१
तेवर (त्रै.) - कमलनयन पांडेय, १५८७/४, उदय प्रताप कॉलोनी, बढ़ैयावीर, सिविल लाइन्स, सुलतानपुर - २२८ ००१
दस्तक (त्रै.) - राघव आलोक, "साराजहां", मकदमपुर, जमशेदपुर - ८३१ ००२
दीर्घाबोध (त्रै.) - कमल सदाना, अस्पताल चौक, ईसागढ़ रोड, अशोक नगर ४७३ ३३१ (म. प्र.)
दीर्घा (त्रै.) - डॉ. विनय, २५ बैंग्लो रोड, कमला नगर, दिल्ली ११० ००७
द्वीप लहरी (त्रै.) - डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी, हिंदी साहित्य कला परिषद, पोर्ट ब्लेयर ७४४ १०१
डांडी-कांटी (त्रै.) - मधुसिंह विष्ट, भगवान नगर, नलपाड़ा, सैंडोज बाग, कापुर बावड़ी, ठाणे ४०० ६०७
निमित्त (त्रै.) - श्याम सुंदर निगम, १४१५, 'पूर्णिमा', रतनलाल नगर, कानपुर २०८ ०२२
निष्कर्ष (त्रै.) - गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, ५९ खैराबाद, दरियापुर रोड, सुलतानपुर - २२८ ००१
परिधि के बाहर (त्रै.) - नरेंद्र प्रसाद 'नवीन,' पीयूष प्रकाशन, महेंद्रू, पटना - ८०० ००६
पश्यंती (त्रै.) - प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय, बी-१/१०४ जनकपुरी, नयी दिल्ली - ११० ०५८
प्रगतिशील आकल्प (त्रै.) - डॉ. शोभनाथ यादव, पंकज क्लासेज, पोस्ट ऑफिस बिल्डिंग, जोगेश्वरी (पू.), मुंबई ४०० ०६०
प्रयास (त्रै.) - शंकर प्रसाद करगेती, 'संवेदना', एफ-२३, नयी कॉलोनी, कासिमपुर, अलीगढ़ - २०२ १२७
प्रेरणा (त्रै.) - अरुण तिवारी, सी-१६०, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०१६
पुरुष (त्रै.) - विजयकांत, निराला नगर, गोशाला रोड, मुजफ्फरपुर ८४२ ००२ (बिहार)
पुरवाई (त्रै.) - पद्मेश गुप्त, (भारतीय संपर्क : ऋचा प्रकाशन, डी-३६ साउथ एक्सटेंशन, पार्ट-१, नयी दिल्ली ११० ०४९
भाषा सेतु (त्रै.) - डॉ. अंबाशंकर नागर, हिंदी साहित्य परिषद, २ अमर आलोक अपार्टमेंट, बालवाटिका, मणिनगर, अहमदाबाद - ३८० ००८
मसि कागद (त्रै.) - डॉ. श्याम सखा 'श्याम,' १२ विकास नगर, रोहतक १२४ ००१
मुहिम (त्रै.) - बच्चा यादव / रणविजय सिंह सत्यकेतु, रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया - ८५४ ३०१

युग साहित्य मानस (त्रै.) - सी. जय शंकर बाबु, १८/७९५/एफ/८-ए, तिलक नगर, गुंतकल - ५१५ ८०१ (आं. प्र.)
युगीन काव्या (त्रै.) - हस्तीमल 'हस्ती,' २८ कालिका निवास, नेहरू रोड, सांताक्रुज, मुंबई - ४०० ०५५
वर्तमान जनगाथा (त्रै.) - बलराम अग्रवाल, डी-२२ शांतिपथ, पत्रकार कॉलोनी, तिलक नगर, जयपुर - ३०२ ००४
वर्तमान संदर्भ (त्रै.) - संगीता आनंद, टैगोर हिल रोड, मोराबादी, रांची ८३४ ००८
विषय वस्तु (त्रै.) - धर्मेंद्र गुप्त, २७४ राजधानी एन्क्लेव, रोड नं. ४४, शकूर बस्ती, दिल्ली - ११० ०३४
शब्द-कारखाना (त्रै.) - रमेश नीलकमल, अक्षरविहार, अवंतिका मार्ग, जमालपुर - ८११ २१४ (बिहार)
संबोधन (त्रै.) - कमर मेवाड़ी, चांदपोल, कांकरोली - ३१३ ३२४
समकालीन सृजन (त्रै.) - शंभुनाथ, २० बालमुकुंद मक्कर रोड, कलकत्ता - ७०० ००७
साखी (त्रै.) - केदारनाथ सिंह, प्रेमचंद साहित्य संस्थान, प्रेमचंद पार्क, बेतिया हाता, गोरखपुर - २७३ ००१
सदभावना दर्पण (त्रै.) - गिरीश पंकज, जी-५० नया पंचशील नगर, रायपुर - ४९२ ००१
सार्थक (त्रै.) - मधुकर गौड़, १/ए/३०३ व्ल्यू ओसन, व्ल्यू एंपायर कॉम्पलेक्स, महावीर नगर, कांदिवली (प.), मुंबई - ४०० ०६७
संयोग साहित्य (त्रै.) - मुरलीधर पांडेय, २०४/'ए' चिंतामणि अपार्टमेंट, आर.एन.पी. पार्क, काशी विश्वनाथ नगर, भयंदर, मुंबई - ४०११०५
सही समझ (त्रै.) - डॉ. सोहन शर्मा, ई-५०३, गोकुल रेजीडेंसी दत्तानी पार्क, वेस्टर्न एक्सप्रेस हाइवे, कांदिवली (पू.), मुंबई - ४०० १०१
स्वातिपथ (त्रै.) - कृष्ण 'मनु', साहित्यांजन, बी-३/३५, बालुडीह, मुनीडीह, धनबाद - ८२८ १२९
शब्द संसार (त्रै.) - संजय सिन्हा, पो. बॉक्स नं. १६४, आसनसोल ७१३३०१
शुरुआत (त्रै.) - वीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव, ३० आकाश गंगा परिसर, पुरानी बस्ती, मनेंद्रगढ़
शेष (त्रै.) - हसन जमाल, पन्ना निवास के पास, लोहार पुरा, जोधपुर -३४२ ००२
हिंदुस्तानी ज़बान (त्रै.) - डॉ. सुशीला गुप्ता, महात्मा गांधी बिल्डिंग, ७ नेताजी सुभाष रोड, मुंबई - ४०० ००२
देवदीप (वा.) - डॉ. कपिल पांडेय, ३६/२५११ अध्युदय नगर, परेल टैंक रोड, मुंबई - ४०० ०३३
अविरल मंथन (अ.) - राजेंद्र वर्मा, ३/२९ विकास नगर, लखनऊ - २२६ ०२०
कला (अ.) - कलाधर, नया टोला, लाइन बाजार, पूर्णियां - ८५४ ३०१
पुनः (अ.) - कृष्णानंद कृष्ण, दक्षिणी अशोक नगर, पथ सं-८बी, कंकड़ बाग, पटना - ८०० ०२०
सरोकार (अ.) - सदानंद सुमन, रानीगंज, मेरीगंज, अररिया - ८५४ ३३४
समीचीन (अ.) - डॉ. देवेश ठाकुर, बी-२३ हिमाचल सोसायटी, असल्फा, घाटकोपर (पू.), मुंबई ४०० ०८४
सम्यक (अ.) - मदन मोहन उपेंद्र, ए-१० शांतिनगर (संजय नगर), मथुरा २८१ ००१

समीचीन संकल्प ट्रस्ट

द्वारा आयोजित

'देवेश ठाकुर कथा सम्मान' पुरस्कार - २००३

३५ वर्ष तक की आयु के कहानीकारों से वर्ष २००२ में प्रकाशित उनकी श्रेष्ठ मौलिक कहानियां आमंत्रित हैं. लेखकों से अनुरोध है कि वे अपनी आयु तथा रचना की मौलिकता को लिखित रूप में स्वयं प्रमाणित करें.

पुरस्कार राशि : ११,००१ रुपये

पुरस्कृत कहानी का चयन तीन सदस्यीय निर्णायक मंडल करेगा. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम होगा. कहानियां १५ जून, २००३ तक निम्नलिखित पते पर मिल जानी चाहिए.

डॉ. सतीश पांडेय

ए-१८, संतोषी मां अपार्टमेंट, विट्ठलवाडी, कल्याण (पूर्व) - ४२१ ३०६.

: प्राप्ति - स्वीकार :

ये शहर है, साहब ! (कहानी संग्रह) : पवन शर्मा, दिशा प्रकाशन, १३८/१६ त्रिनगर, दिल्ली - ११००३५. मू. : ९० रु.
रेत की आंख (कहानी संग्रह) : राजेंद्र कोचला 'अंबर', शास. उ. मा. विद्यालय मानपुर, जिला - इंदौर. मू. : ८० रु.
उम्मीद (कहानी संग्रह) : के. एल. दीवान, ज्ञानोदय अकादमी, लिटिल एंजिल्स प्रिपरेट्री स्कूल, ३८० गोविंदपुरी, हरद्वार. मू. : १०० रु.
चेहरे (साक्षात्कार) : रास बिहारी पांडेय, रसराज, पो. बॉ. १६८०५, सांताक्रुज, मुबई - ४०० ०५५ मू. : १०० रु.
नहूष (नाटक) : सुतीक्ष्ण कुमार शर्मा 'आनंदम', साक्षर प्रकाशन, ४०२, अंबकला, जम्मू - १८० ००५ मू. : १५० रु.

पांडव प्रिया (खंड काव्य) : कांतिलाल ठाकरे, दिशा प्रकाशन, १३८/१६ त्रिनगर, दिल्ली - ११००३५. मू. : १५० रु.
आत्म-विजय की ओर (कविता) : अक्षय गोजा, सुरेंद्र कुमार एंड सन्ज, ३०/२१ ए-२२ए,
गली नं. ९, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली ११० ०३२. मू. : १०० रु.
अबके आया नहीं कबीरा (काव्य) : प्रेम कृष्ण शर्मा, अंतरीप प्रकाशन, ४९ विवेक नगर, स्टेशन रोड, जयपुर. मू. : १०० रु.
क़लम उठ जाती है...(काव्य) : नटवर पारीक, संजीव पब्लिकेशन्स, जयपुर. मू. : १००
आंच न आने देंगे (कविता संग्रह) : राजपाल यादव 'अलबेला', प्राची प्रकाशन, एम-२६, चितरंजन पार्क, नयी दिल्ली ११० ०१९ मू.: ६०रु.
नहीं मैं सच नहीं बोलूंगा (काव्य) : जयनाथ मणि त्रिपाठी, काव्यायनी प्रकाशन,
डी-२१५, बड़ालालपुर आवासीय योजना, वाराणसी, मू. :६० रु.
अहसासों की आंच (कविता संग्रह) : डॉ. प्रद्युम्न भल्ला, राज पब्लिशिंग हाउस,
९/५१२३, पुराना सीलमपुर, दिल्ली ११० ०३१ मू. : ८० रु.
तेरे ख़ुशबू में बसे ख़त (शायरी) : राजेंद्र नाथ रहबर, दर्पन पब्लिकेसन्ज, बी-३५/११७, सुभाष नगर, पठानकोट १४५ ००१ मू. : १२०रु.
सरगोशियां (ग़ज़ल-संग्रह) : इंदिरा शबनम, ९/ब, 'मयूरबन' अपार्टमेंट, ११०० शिवाजी नगर, मॉडेल कॉलोनी, पुणे ४११ ०१६ मू. : ७५रु.
तस्वीरें (काव्य-संग्रह) : इंदिरा शबनम, ९/ब, 'मयूरबन' अपार्टमेंट, ११०० शिवाजी नगर, मॉडेल कॉलोनी, पुणे ४११ ०१६ मू. : १००रु.
अभिशप्त है मन (काव्य) : डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी 'शलभ' अक्षत पब्लिकेशन्स, २१६ उमेदनगर कॉलोनी (जूनी), भुज, कच्छ (गुजरात)
पहचान (काव्य) : मोनिमा चौझुरी 'मनु', राष्ट्रीय राजभाषा पीठ, ५३५/१-आर, मीरापुर, इलाहाबाद २११ ००३ मू. : ५० रु.
तुम्हीं कोई नाम दो (काव्य-संग्रह) : वीरेंद्र सिंह गूंबर, अग्नि प्रकाशन,
ए-७५३, डी.डी. ए. कॉलोनी, बौखंडी, नयी दिल्ली ११० ०१८ मू. : ३० रु.
चांद का सफ़र (शायरी) : डॉ. गणेश गायकवाड, ऋतुजा प्रकाशन, सुवर्ण नगर, बुलढाणा (महा.) मू. : २४ रु.
आर्तभाव (आरती-संग्रह) : विपुल 'लखनवी', ७८ शबरीगिरी, अणुशक्तिनगर, मुंबई-४०० ०९५ मू. : भक्तिभाव

फॉर्म-८

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत 'कथाबिंब' त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण :-

१.	प्रकाशन का स्थान	: आर्ट होम, शांताराम सालुंके मार्ग,
		: घोड़पदेव, मुंबई-४०० ०३३.
२.	प्रकाशन की आवर्तिता	: त्रैमासिक
३.	मुद्रक का नाम	: मंजुश्री
४.	राष्ट्रीयता	: भारतीय
५.	संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता	: उपर्युक्त
६.	कुल पुंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता	: स्वत्वाधिकारी मंजुश्री

मैं मंजुश्री घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.

(हस्ताक्षर - *मंजुश्री*)

'रेवा सक्सेना स्मृति पुरस्कार'

अभिमत पत्र

वर्ष २००२ के सभी अंकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक / रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,३,...७,८) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें. आप चाहें तो इस *अभिमत पत्र* का प्रयोग करें अथवा आठ कहानियों का क्रम अलग से **एक पोस्टकार्ड** पर भी लिख कर भेज सकते हैं. प्राप्त अभिमतों के आधार पर पिछले दो वर्षों की तरह ही प्रथम (१००० रु.- एक), द्वितीय (७५० रु. - दो) व प्रोत्साहन (५०० रु. के तीन) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. जिन पाठकों की भेजी क्रमवार सूची अंतिम सूची से मेल खायेगी उन्हें **'कथाबिंब'** की **त्रैवार्षिक सदस्यता (१२५ रू.)** प्रदान की जायेगी. ये पुरस्कार जैसा कि विदित ही है **श्री उमेश चंद्र सक्सेना** द्वारा अपनी पत्नी की स्मृति में दिये जाते हैं. इस लोकतांत्रिक आयोजन की सफलता इसी में है कि ज्यादा से ज्यादा पाठक अपना मत व्यक्त करें.

कहानी शीर्षक / रचनाकार	आपका क्रम
१. हिस्सेदारी - *डॉ. सुकीर्ति गुप्ता*	
२. क्षमा - *डॉ. अजय शर्मा*	
३. अपने-अपने कल्पवास - *सुधीर अग्निहोत्री*	
४. जूनी झूठ नहीं बोलती - *राजीव सिंह*	
५. अवसर - *डॉ. देवेंद्र सिंह*	
६. अपना-अपना नर्क - *संतोष श्रीवास्तव*	
७. वैतरण - *कमल*	
८. एक चिट्ठी अहमदाबाद से - *विजय*	
९. अनुराग वर्मा को अनुराग वर्मा ही रहने दो - *अनिमा नरेश*	
१०. संधि (असमिया कहानी) - *पदुमी गगै*	
११. नया चेहरा - *राकेश कुमार सिंह*	
१२. दूसरा नरककुंड - *जयवंती डिमरी*	
१३. खून - *कृष्ण सुकुमार*	
१४. कल का मोर्चा - *पुष्कर द्विवेदी*	
१५. लखमी संग सत्तरह घंटे - *डॉ. सतीश दुबे*	
१६. पहला पत्थर - *अमर स्नेह*	
१७. धुरी - *श्रीनाथ*	
१८. त्रिभुज - *असफल*	
१९. नाम में क्या रखा है ! - *राजेंद्र सिंह गहलौत*	
२०. कान्हा माफ़ करना - *डॉ. अज़रा 'नूर'*	
२१. लौटते हुए - *डॉ. उर्मिला शिरीष*	

हमारे आजीवन सदस्य

प्रारंभ से लेकर अब तक 'कथाबिंब' ने काफी उतार-चढ़ाव देखे हैं. इस दौरान जिन व्यक्तियों या संस्थाओं से हमें सहयोग मिला हम उन सभी के आभारी हैं. 'कथाबिंब' का देश में, एक व्यापक पाठक वर्ग बन गया है. हमारी इच्छा है कि 'कथाबिंब' और अधिक लोगों द्वारा पढ़ी जाये.

आजीवन सदस्यों के हम विशेष आभारी हैं. जिनके सहयोग ने हमें ठोस आधार दिया है. सभी आजीवन सदस्यों से निवेदन है कि वे एक या दो या अधिक लोगों को आजीवन सदस्यता स्वीकारने के लिए प्रेरित करें. संभव हो तो अपने संपर्क के माध्यम से विज्ञापन भी उपलब्ध करायें. ***यदि विज्ञापन दिलवा पाना संभव है तो कृपया हमें लिखें.***

- संपादक

१) श्री अरुण सक्सेना, नवी मुंबई
२) डॉ. आनंद अस्थाना, हरदोई
३) स्वामी विवेकानंद हाई स्कूल, कुर्ला, मुंबई
४) डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव, मुंबई
५) डॉ. वेणुगोपाल, मुंबई
६) डॉ. नागेश करंजीकर, मुंबई
७) डॉ. प्रेम प्रकाश खन्ना, मुंबई
८) श्री हरभजन सिंह दुआ, नवी मुंबई
९) डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी, मुंबई
१०) श्री उमेशचंद्र भारतीय, मुंबई
११) श्री अमर ठकुर, मुंबई
१२) श्री बी. एम. यादव, मुंबई
१३) श्री संतोष कुमार अवस्थी, बड़ौदा
१४) सुश्री शशि मिश्रा, मुंबई
१५) श्री भगीरथ शुक्ल, बोईसर
१६) श्री कन्हैया लाल सराफ, मुंबई
१७) श्री अशोक आंद्रे, पचमढ़ी
१८) श्री कमलेश भट्ट 'कमल', मथुरा
१९) श्री राजनारायण बोहरे, दतिया
२०) श्री कुशेश्वर, कलकत्ता
२१) सुश्री कनकलता, धनबाद
२२) श्री भूपेंद्र शेठ 'नीलम', जामनगर
२३) श्री संतोष कुमार शुक्ल, शाहजहांपुर
२४) प्रो. शाहिद अब्बास अब्बासी, पांडिचेरी
२५) सुश्री रिफ़अत शाहीन, गोरखपुर
२६) श्रीमती संध्या मल्होत्रा, अनपरा, सोनभद्र
२७) डॉ. वीरेंद्र कुमार दुबे, चौरई
२८) श्री कुमार नरेंद्र, दिल्ली
२९) श्री मुकेश शर्मा, गुड़गांव
३०) डॉ. देवेंद्र कुमार गौतम, सतना
३१) श्री सत्यप्रकाश, मुंबई
३२) डॉ. नरेश चंद्र मिश्र, मुंबई
३३) डॉ. लक्ष्मण सिंह विष्ट, 'बटरोही,' नैनीताल
३४) श्री एल. एम. पंत, मुंबई
३५) श्री हरिशंकर उपाध्याय, मुंबई
३६) श्री देवेंद्र शर्मा, मुंबई
३७) श्रीमती राजेंद्र कौर, नवी मुंबई
३८) डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला, नवी मुंबई
३९) श्री नवनीत ठक्कर, अहमदाबाद
४०) श्री दिनेश पाठक 'शशि', मथुरा
४१) श्री प्रकाश चंद्र श्रीवास्तव, वाराणसी
४२) डॉ. हरिमोहन बुधौलिया, उज्जैन
४३) श्री जसवंत सिंह विरदी, जालंधर
४४) प्रधानाध्यापक, 'ब्लू बेल' स्कूल, फतेहगढ़
४५) डॉ. कमल चोपड़ा, दिल्ली
४६) श्री आर. एन. पांडे, मुंबई
४७) डॉ. सुमित्रा अग्रवाल, मुंबई
४८) श्रीमती विनीता चौहान, नवी मुंबई
४९) श्री सदाशिव 'कौतुक', इंदौर
५०) श्रीमती निर्मला डोसी, मुंबई
५१) श्रीमती नरेंद्र कौर छाबड़ा, औरंगाबाद
५२) श्री दीप प्रकाश, मुंबई
५३) श्रीमती मंजु गोयल, नवी मुंबई
५४) श्रीमती सुधा सक्सेना, नवी मुंबई
५५) श्रीमती अनीता अग्रवाल, धौलपुर
५६) श्रीमती संगीता आनंद, रांची
५७) श्री मनोहर लाल टाली, मुंबई
५८) श्री एन. एम. सिंघानिया, मुंबई
५९) श्री ओ. पी. कानूनगो, मुंबई
६०) डॉ. ज. वी. यख्मी, मुंबई
६१) डॉ. अजय शर्मा, जालंधर
६२) श्री राजेंद्र प्रसाद 'मधुबनी', मधुबनी
६३) श्री ललित मेहता 'जालौरी,' कोयंबटूर
६४) श्री अमर स्नेह, नवी मुंबई
६५) श्रीमती मीना सतीश दुबे, इंदौर
६६) श्रीमती आभा पूर्वे, भागलपुर
६७) श्रीमती आभा गोस्वामी, मुंबई
६८) श्रीमती राजेश्वरी विनोद, नवी मुंबई
६९) श्रीमती संतोष गुप्ता, नवी मुंबई
७०) श्री विशंभर दयाल तिवारी, मुंबई
७१) श्री अभिषेक शर्मा, नवी मुंबई
७२) श्री ए. बी. सिंह, निबोहड़ा, चित्तौड़गढ़
७३) श्री योगेंद्र सिंह भदौरिया, मुंबई
७४) श्री विपुल सेन 'लखनवी' मुंबई
७५) श्रीमती आशा तिवारी, मुंबई

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या : ३५७६४/७९

कथाबिंब

को

प्रकाशन के

२४ वें वर्ष

में

प्रवेश पर

अशेष

शुभकामनाएं

एक शुभेच्छु

मंजुश्री द्वारा संपादित व आर्ट होम, शांताराम साळुंके मार्ग, घोड़पदेव, मुंबई - ४०० ०३३ में मुद्रित.
टाइप सेटर्स : वन-अप प्रिंटर्स, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फो. : २५२१ २३४८ व २५२१ ६२८४.